

दोष दर्पण

DONATION



ॐ आचार्य प्रियव्रत विद्या वाचस्पति जयल संग्रह

महेन्द्र देव शास्त्री विद्यापसे

प्रकाशक :

अमोध प्रकाशन,

४, अनसारी रोड,

दरियागंज, देहली ।

Admission
Contek

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- (१) आर्य वान प्रस्थाश्रम,
ज्वालापुर, हरिद्वार ।
- (२) श्री गोविन्द राम हासानन्द,
नई सड़क, देहली ।
- (३) गान के पते पर ।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान बादि
न लगायें ।

दोष दर्शन

आचार्य विश्वनाथ वेदवाचस्पति

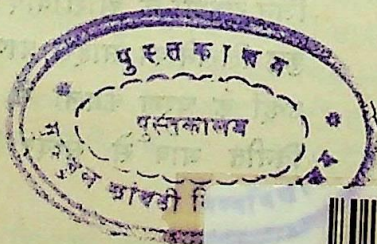
भूतपूर्व कुतपति, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त

ग्रंथ संग्रह.....

9349

लेखक :

महेन्द्रदेव शास्त्री विद्याभूषण



9349

55,6

प्रथम संस्करण]

*

[मूल्य ६० पैसे

चरणों में

जिस परमाराध्य अनन्त शक्ति की कृपा से

प्रेरणा मिली

जिस स्नेहमयी माता तथा परम श्रद्धेय

पिता की चरण वन्दना से बल मिला

एवम्

जिन गुरुओं के आशीर्वाद से मुझे

कुछ लिखने का साहस प्राप्त हुआ

उन्हीं के चरण कमलों में अत्यन्त

विनीत भाव से सादर समर्पित

आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर हरिद्वार में

ता० न - ६ - ७१ की प्रातःकाल मेरा प्रवचन दोषदर्शन विषय पर हुआ। व्याख्यान के बाद कुछ विशिष्ट व्यक्तियों ने यह इच्छा प्रकट की कि इस विषय को लेखबद्ध करके सब लोगों की हित की दृष्टि से पुस्तक रूप दे दिया जावे। उस प्रेरणा से प्रेरित होकर ही मैंने विषय को कुछ विस्तृत रूप देकर पुस्तक को छोटे ही आकार में पूर्ण किया। मेरी अभिलाषा यही है कि आध्यात्मिक विषयों को लेकर ही मैं छोटे-छोटे आकार की पुस्तकें प्रस्तुत करता रहूँ। इन छोटी-छोटी पुस्तकों के द्वारा जनता को बड़ा लाभ पहुँचेगा। प्रथम तो येगम्भीर विषय जो भिन्न-भिन्न शास्त्रों में जहाँ तहाँ वर्णित हैं एक जगह शृङ्खलाबद्ध होकर लोगों के सामने आ जावेंगे। दूसरे छोटे आकार की पुस्तक होने के कारण आद्योपान्त लोगों को पढ़ने में सुविधा और अमिरुचि होगी। तीसरे इन विषयों का सरल भाषा में वर्णन होने के कारण सभी व्यक्ति इसका स्वाध्याय कर लाभ उठा सकेंगे। आध्यात्मिक विषय पर संस्कृत के बड़े ग्रन्थ तो बहुत हैं किन्तु हिन्दी जानने वाले साधारणजन उनसे लाभ नहीं उठा पाते क्योंकि भिन्न-भिन्न स्थलों पर ये विषय बिखरे हुए हैं। पाठकों को ऐसे विषय एक ही जगह मिल जावेंगे। दोष दर्शन पुस्तक के लिखने का मुख्य उद्देश्य यही है कि प्रथम लोग—

“विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव”

इस वेद मन्त्र के आधार पर अपने दुर्गुण, दोष और तर्जानों को दूर करें तभी भद्र उनके अन्दर प्रविष्ट। और दुर्व्यसन तभी दूर किये जा सकते हैं दोष हमारे अन्दर कहाँ हैं और कौन-कौन-हानि हो सकती है।



9349

होने पर हमें क्या लाभ पहुँच सकता है, तभी तो हमारा प्रयत्न प्रारम्भ हो सकता है। दोषों को दूर किये बिना अच्छाइयाँ हमारे अन्दर आ भी नहीं सकतीं जब मनुष्य के अन्दर दोष घुस जाते हैं और बहुत समय तक रह जाते हैं तो व्यक्ति को उनसे ही प्रेम हो जाता है और वह व्यक्ति फिर उनको ही अच्छा समझने लगता है और उनका ही दास हो जाता है। जैसे कपड़ों में या पुस्तकों में सील (नमी) लग जाने पर यदि धूप लगा कर उस सील को दूर न कर दिया जावे तो दीमक लग जाती है। एक रोग के होने पर यदि उस रोग को दूर न किया जावे तो एक रोग से दूसरा रोग पैदा हो जाता है उसही प्रकार एक दोष के पैदा होने पर यदि उसे दूर न किया जावे तो उससे दूसरा दोष पैदा हो जाता है। दोष मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु हैं, अपना कल्याण चाहने वाले व्यक्ति के लिये उन्हें दूर करना परमावश्यक है, क्योंकि इन्हें दूर किये बिना मनुष्य सुख शान्ति नहीं पा सकता, किन्तु दोष दर्शन का लाभ उसको पहुँच सकता है जो दोष दर्शन करने के साथ २ अपनी प्रबल इच्छा यह बनाये कि मुझे दोषों को नष्ट करना है। सुख की प्राप्ति और दुःखों को दूर करने के लिये यह उपक्रम है।

विषय दोष

प्रायः विषयासक्त पुरुष ही विषयों में लिप्त होने के कारण दोष दुष्ट हो जाता है। विषयों के ध्यान से ही मनुष्य विषयों में फँस जाता है।

“विषयान्ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते,
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येवप्रविलीयते”

आप जैसा चिन्तन करेंगे वैसे ही हो जावेंगे। निरन्तर विषयों के चिन्तन से जीवन विषयी बन जाता है, प्रभु का चिन्तन करने से प्रभु के गुण मनुष्यों में फैल जाते हैं। अथवा अन्धकार से मीठा पदार्थ कहा—

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते,
 संगत्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते,
 क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः,
 स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशः बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।

(अर्थ) जब मनुष्य विषयों का निरंतर ध्यान करता है तो निश्चित रूप से उन विषयों से उसका संपर्क हो जाता है। पूर्णसम्पर्क होने से मन में उनकी कामना होती है, यदि कामना पूर्ण नहीं होती है तो मनुष्य को क्रोध होने लगता है, क्रोध से मनुष्य किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है, उसके बाद उसकी स्मृति शक्ति नष्ट हो जाती है, स्मृति-शक्ति नष्ट होने से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि नष्ट होने पर मनुष्य ही नष्ट हो जाता है।

इसलिये विषय विकारों को दूर करने के लिये चित्तवृत्तियों का निरोध बताया है। चित्तवृत्तियों का निरोध अभ्यास और वैराग्य से होता है किन्तु महर्षि पतञ्जलि ने—

“अभ्यास वैराग्याभ्यान्निरोधः”

इस सूत्र में अभ्यास को प्राथमिकता दी है। वास्तव में—

“अभ्यासः परमं तपः”

बार बार किसी काम को करना ही अभ्यास है और संसार में सब कुछ अभ्यास साध्य ही है। अभ्यास के द्वारा ही मनुष्य चित्तवृत्तियों पर क्रावू पा सकता है। अभ्यास एक शक्ति है, अच्छे कामों का अभ्यास मनुष्य को उठाता है और नीचे कामों का अभ्यास मनुष्य को नीचे गिराता है। जो आठ समय चाय पीने के अभ्यासी हैं उन्हें यदि ठीक समय पर आठ बार चाय न मिले तो वो कोई कार्य कर ही नहीं सकते। शराब पीने के अभ्यासी को शराब न मिले तो वह अपने को शक्तिहीन समझता है। यही दशा समस्त नशा करनेवालों की होती

है। माँग, चरस, चण्डू, मदक, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट पीने वाले लोग अपने अपने अभ्यास के अनुरूप नशा करते हैं। शराब पीने वालों को यथा समय शराब नहीं मिलती है तो वो स्पिरिट पीकर ही अपने जीवन का अन्त कर देते हैं किन्तु इन बुरे अभ्यासों के कारण इन दोषों को दूर नहीं कर सकते। जब आदमी को बुरे कामों का अभ्यास हो जाता है तो उन बुरे कामों को ही वह अच्छा समझने लगता है। बंगाल में कुछ धीवरों की स्त्रियाँ कनस्तरोँ में भींगा (छोटी मछली) मछलियों को भरकर पेंठ में बेचने गईं। सायंकाल होने पर सब के पास कुछ कुछ मछलियाँ बच गईं। घरों को लौटने लगीं तो बीच में ओलों के साथ वर्षा होने लगी। परेशानी से बचने के लिए वो पास में बनी एक किसान की भोंपड़ी पर पहुँच गईं। वह किसान फूलों की खेती करता था और बाजार में उन्हें बेच देता था, इसके लिए उसने एक कोठा बनवाया हुआ था जिसमें वह फूलों का ढेर जमा करता था। भिन्न भिन्न प्रकार के फूलों की सुगन्ध से कोठा महकता रहता था। उन स्त्रियों ने किसान से कहा कि हमें दूर अपने गाँव जाना है किन्तु अब रात्रि का समय हो गया है और वर्षा तथा ओले भी पड़ रहे हैं हमें रात्रि भर विश्राम करने के लिए कोई स्थान बता दो। किसान ने दया भाव से उन स्त्रियों से कहा कि और तो मेरे पास कोई स्थान नहीं है यह कोठा है जिसमें फूल भरे हैं इस ही में विश्राम करके गुज़ारा कर लो। खाना पीना खाकर सभी स्त्रियाँ उसमें सो गईं किन्तु बहुत देर तक किसी को निद्रा ही नहीं आई क्योंकि फूलों की गन्ध उन्हें परेशान कर रही थी। निद्रा के अभाव के कारण सभी स्त्रियाँ बड़ी परेशान थीं। उनमें से एक चतुर स्त्री ने उन्हें सलाह दी कि अपने अपने कनस्तरोँ को नाक से लगा कर सो जाओ, सबने ऐसा ही किया और सब को निद्रा आ गई। मछलियों की बदबू ने उनको सन्तुष्ट करके सुला दिया।

समस्त व्यसनियों की संसार में यही दशा होती है। जिस जिस व्यसन का जो अभ्यास होता है वह उस उस व्यसन से ही सन्तुष्ट

होता है। यह मनुष्य का बड़ा भारी दोष है। साधारण प्रयत्न से ये दोष दूर नहीं किये जा सकते। तीन प्रकार के मनुष्य संसार में देखे जाते हैं (१) “पूर्ण बद्ध” जो व्यसनों में पूर्णतया जकड़े होते हैं वो व्यसनों में ही अति कष्ट भोगते हुए भी अपना जीवन व्यतीत कर डालते हैं। जैसे गुबरीला जानवर होता है वह गोबर में और गन्दगी में ही पैदा होता है उसमें ही रमण करता है और उसमें ही मर जाता है, यदि उसको कमल के फूल पर रख दिया जावे तो उसकी मृत्यु ही हो जाती है। (२) दूसरे “साधारण बद्ध” होते हैं जो कभी व्यसनों में फँस जाते हैं, कभी व्यसनों से निकल जाते हैं, जब किसी साधु सन्त महात्मा से उपदेश प्राप्त होता है तो उन्हें विषय नीरस मालूम पड़ने लगते हैं किन्तु फिर व्यसनियों के चंगुल में फँसने पर फिर विषयों का आनंद लेने लगते हैं। इनकी स्थिर बुद्धि नहीं होती और ये अपने विचारों में कट्टर भी नहीं होते इनकी दशा साधारण मक्खियों जैसी होती है। साधारण मक्खियाँ हलवाईयों की दूकानों पर थालों में सजी मिठाइयों का रस लेती हैं किन्तु यदि कोई भंगिन गन्दगी का टोकरा उठाए उधर से निकल जावे तो हलवाई के थालों को छोड़कर गंदगी के टोकरे पर जा बैठती हैं। इसही प्रकार व्यसनी भी जब व्यसन सामने आते हैं तो व्यसनी मित्रों के अनुरोध पर उधर खिंचे चले जाते हैं और कल्याण मार्ग के सभी उपदेशों को भुला बैठते हैं।

(३) तीसरे व्यक्ति ‘देव’ अथवा “जीवन मुक्त” होते हैं जो व्यसनों के पास ही नहीं फटकते, उनको विषय आकृष्ट कर ही नहीं पाते उनकी आत्मा में प्रकाश होता है, वो व्यसनों के दोषों को भली प्रकार जानते हैं, उन दोषों के परिणामों को भी खूब पहिचानते हैं, उनकी दशा मधुमक्षिका (शहद की मक्खी) जैसी होती है जो कभी गन्दगी के टोकरों पर बैठती ही नहीं, सदा फूलों का और फलों का रस पान कर जीवन व्यतीत करती रहती है और लोगों को सैंकड़ों मन मधु (शहद) इकट्ठा करके दे जाती है। सारा संसार विषय दोषों में इस प्रकार फँस गया है कि साधारण प्रयत्न से इन व्यसनों, मक्खियों, मधुमक्षिका

जिन पाश्चात्य देशों का भारत अनुकरण करना चाहता है उनकी दशा तो इन व्यसनों में फंसने के कारण स्वयं ही इतनी विगड़ गई है कि वो जीवन से ही परेशान हो गए हैं। अमरीका में प्रायः लोग रात्रि के समय प्रथम तो सिनेमा देखते हैं फिर ड्रामा देखने चले जाते हैं। उसके बाद नाच घरों में आनन्द लेते हैं फिर रैस्टोरेन्टों में जाकर मांस, मछली, अण्डे खाकर तथा शराब पीकर रात्रि के २ बजे निद्रा लाने की गोलियां खाकर सो जाते हैं इस प्रकार इन्द्रियों के सभी विषयों में फंस कर, अत्यन्त कामासक्त होकर अपने जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर डालते हैं।

“दोषेषु तीव्रो विषयः कृष्णसर्पविपादपि

विषं निहन्ति भोक्तां द्रष्टारं चक्षुषाप्ययम्।

दोषों में विषय काले सर्प के विष से भी अधिक तीव्र है विष तो खाने वाले को ही मारता है किन्तु विषय तो आँखों से देखने वाले को भी नहीं छोड़ते।

मोक्षस्यकाङ्क्षा यदि वै तवास्ति

त्यजाति दूराद् विषयान् विषं यथा।

यदि सुख प्राप्ति की इच्छा है तो जैसे विष को आदमी हाथ नहीं लगाता उस ही प्रकार अत्यन्त दूर से ही विषयों को छोड़ दो। इन विषयों में एक बड़ा भारी दोष यह भी है कि एक बार अपनाया गया विषय फिर मनुष्य का पिण्ड नहीं छोड़ता, इसलिये प्रारम्भ से ही इनको न अपनाना और इनके पास न जाना ही श्रेयस्कर है। विषय त्याग का सबसे अच्छा तरीका यही है कि इनसे हृदय से घृणा की जाये और इनसे बिल्कुल सम्पर्क न रखा जाये। बहुत से लोग परीक्षण की दृष्टि से एक बार विषय दोष को जानने की इच्छा रखते हैं किन्तु यह बड़ी भ्रान्त धारणा है। वेश्या गमन के दोष को जानने का इच्छुक एक बार वेश्या गमन करके उस दोष को जान जाये

और फिर उससे मुक्त हो जाये यह कठिन है। विषय रस इतना प्रबल होता है कि वो अपने रस के द्वारा मनुष्य को अपनी तर्फ ही खींच लेता है। इसलिये विषय सम्पर्क ही बुरा है।

ऋषि दयानन्द मथुरा में जब स्वामी विरजानन्द जी दण्डी के पास अध्ययन करते थे तब १ दिन यमुनापार रेती में ध्यानावस्थित बैठे हुए थे, उनके दिव्य शरीर, ओजःपूर्ण मुखमण्डल और ब्रह्मचर्य के तेजःप्रभाव से प्रभावित होकर श्रद्धा और भक्ति पूर्ण हृदय से एक देवी ने ऋषि दयानन्द की चरणों की धूल का स्पर्श कर अपने को कृत-कृत्य करने का प्रयास किया। ऋषिवर की समाधि खुल गई उन्होंने देखा कोई देवी चरणों का स्पर्श करके चली गई है उस ही समय उनके हृदय में दारुण वेदना पैदा हुई और इसका प्रायश्चित्त करने का दृढ़ संकल्प किया। ऋषि ३ दिन तक समाधिस्थ होकर वहीं भूखे प्यासे बैठे रहे और इस ग्लानि को दूर किया। जो अपने कपड़ों में आग लगा कर अग्नि की शक्ति की परीक्षा करना चाहे उससे अधिक मूर्ख भला संसार में कौन हो सकता है।

“प्रक्षालनाद्भि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्”

कीचड़ में फंस कर उसकी गन्दगी को साबुन से धोने की अपेक्षा उससे दूर रहना ही अच्छा है।

विषस्य विषयाणां च, अन्तरम् महदन्तरम्
उपभुक्तं विषं हन्ति, विषयाः स्मरणादपि

वास्तव में ही विष की अपेक्षा विषय अधिक विषैले होते हैं। विष खाने पर जीवन को समाप्त करता है किन्तु विषय तो स्मरण मात्र से ही मनुष्य का जीवन बर्बाद कर देते हैं इसलिये इन भयङ्कर विषय दोषों से मनुष्य को बचना चाहिये।

रागदोष

राग दोष से भी मनुष्य भयानक कष्टों में पड़ जाता है सारा संसार रागों के पीछे ही मले-बुरे कर्मों को करता है, राग सभी विषयों के प्रति हो सकता है सम्पत्ति के प्रति हो सकता है, स्त्री, पुत्र पुत्री, बन्धु, वान्धव, मित्र, पशु पक्षी सभी के प्रति हो सकता है। जहाँ राग है वहीं अनुराग अर्थात् प्रेम है। राग के पीछे होने के कारण ही प्रेम को अनुराग कहा है। जब मनुष्य राग अनुराग को छोड़ कर सब प्राणियों में समत्व की भावना कर लेता है तभी वैराग्य को प्राप्त होकर उसे पूर्ण शान्ति मिलती है। राग के कारण ही एक दूसरे से वियुक्त होने पर लोग दुःखी होते हैं, अपने किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर आंसू बहाते हैं, इस राग से ही जो अज्ञान पैदा होता है वही मोह कहलाता है इस मोह के कारण ही पशु पक्षियों के पीछे भी लोग प्रेम में दुःखी होते देखे गए हैं। कुत्ते बिल्लियों की मृत्यु के बाद भी लोगों को रोते देखा गया है।

रागो लिङ्गमबोधस्य चित्त व्यायाम भूमिषु

कुतः शाद्वलता तस्य यस्याग्निः कोटरेतरोः

चित्त के फैले हुए समस्त कार्यों में राग अज्ञान का चिन्ह है। जिस प्रकार किसी वृत्त के खखोटर में आग लगने पर वृत्त की हरियाली नष्ट हो जाती है इस ही प्रकार जिन हृदयों में राग बसे हुए हों वहाँ सुख शान्ति कैसी। इस ही लिये कहा है।

वैराग्यान्नपरं सुखस्य जनकं पश्यामि वश्यात्मनः

तच्चेच्छुद्धतरात्मबोधसहितं स्वाराज्य साम्राज्यधुक्

अर्थात् जितेन्द्रिय पुरुष के लिये वैराग्य से बढ़कर सुखदायक मुक्ति और कुछ भी प्रतीत नहीं होता और वह यदि कहीं शुद्ध आत्मज्ञान

के सहित हो तब तो स्वर्गीय साम्राज्य के सुख का देने वाला होता है ।

महात्मा भर्तृहरि ने कहा—

सर्ववस्तु भयान्वितं भुवि नृणाम् वैराग्यमेवाऽभयम् ।

संसार के सारे कृत्यों में भय प्रविष्ट है, केवल वैराग्य ही निर्भयता देने वाला है ।

गीता में कहा है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति

जब शिक्षित और अज्ञान रहित आत्मा अपने वश में की हुई राग द्वेषों से रहित इन्द्रियों के द्वारा विषयों को भोगता है तो उसे प्रसन्नता प्राप्त होती है ।

प्रसादे सर्व दुःखानां हानिरस्योप जायते

प्रसन्नचेतसो ह्यशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते

और प्रसन्नता प्राप्त होने पर इस पुरुष के सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्त पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही अच्छी प्रकार स्थिर हो जाती है ।

वैराग्य के कारण रागादि सभी दोष दूर हो जाते हैं । राग का विरोधी द्वेष है । जिस चित्त में से राग निकल जाता है उसमें द्वेष भी नहीं रहता ।

वैराग्य की पवित्र स्थिति न होने पर वैराग्य स्थिर नहीं रह सकता । संसार में वैराग्य कई प्रकार का देखा जाता है ।

(१) क्षणिक वैराग्य—कभी किसी साधु सन्त महात्मा से वैराग्य के सम्बन्ध में चर्चा सुनी तो हृदय में वैराग्य की भावना पैदा

हो गई, उस भावना के कुछ समय के बाद नष्ट होने पर वैराग्य भावना भी स्वतः समाप्त हो जाती है। किसी युवा सन्तान के असामयिक निधन पर मन में क्षोभ पैदा होता है और उससे थोड़े समय के लिये संसार से विरक्ति हो जाती है इसे क्षणिक वैराग्य कहते हैं।

(२) श्मशान वैराग्य—किसी की मृत्यु हो जाने पर जब उस शव को श्मशान ले जाया जाता है तो लोग श्मशान भूमि में वैराग्य की चर्चा करते हैं, देखो भाई मनुष्य पानी का सा बुलबुला है, संसार नश्वर है, नमालूम कौन किस समय चल दे, मौत का कोई भरोसा नहीं, कुछ किसी के साथ नहीं जाता, सब यहीं धरा रह जाता है केवल राम नाम ही सत्य है आदि आदि बड़ी-बड़ी वैराग्य की बातें करते हैं किन्तु चिता में आग लगने के बाद उनकी भी ज्ञानाग्नि वहीं समाप्त हो जाती है और फिर उस ही प्रकार सांसारिक प्रपञ्चों में फंस जाते हैं इसे कहते हैं श्मशान वैराग्य।

(३) खटपट वैराग्य—वहूँसे बेटेसे भाईसे बहिनसे और किसी घर के नजदीकी रिश्तेदार से आपस में खटपट हो जाने पर बिस्तर बांधकर जो आदमी हरिद्वार यात्रा को चल पड़ता है या और किसी आश्रम में जाकर वास करता है तो उसे वैराग्य सूझता है किन्तु धीरे-धीरे यह वैराग्य भी पानी के बबूले की तरह बैठ जाता है। जब घर वालों की प्रेमपूर्ण और क्षमापूर्ण चिट्ठियाँ पहुँचती हैं तो आदमी पिघलकर मोम हो जाता है और उसका वैराग्य भी पिघल कर बह जाता है और फिर वह अपने रिश्तेदारों में पहुँच जाता है इसे कहते हैं खटपट वैराग्य।

ज्ञान वैराग्य—यह शास्त्रों के अध्ययन के बाद, कथा सत्संगों में साधु सन्तों के उपदेश सुनने के बाद और उन उपदेशों के चिन्तन के बाद सुसंस्कारी जीवों में जो विवेक पैदा होता है और निरन्तर उसकी वृद्धि के बाद जो ज्ञान के द्वारा संसार से सच्ची विरक्ति होती है उसे कहते हैं ज्ञान वैराग्य।

ऐसे ज्ञानियों का अन्तःकरण परिवर्तन नहीं होता वो अपने निश्चित मार्ग पर आगे बढ़ते ही चले जाते हैं। संसार के आकर्षण उनके लिए तुच्छ हो जाते हैं। संसार की असारता को वो अपनी ज्ञान चक्षुओं से भली प्रकार देख सकते हैं और ज्ञान के द्वारा जब पूर्ण पवित्रता आत्मा में आ जाती है उसे कहते हैं ज्ञान वैराग्य।

ज्ञान वैराग्य कठिन है—कच्चे पक्के वैरागी कुछ समय के बाद परिस्थितियाँ बदलने पर अथवा पूर्व संस्कारों के कारण फिर से राग पैदा होने पर वैराग्य से वञ्चित हो जाते हैं और दुबारा सांसारिक बन्धन में फँस जाते हैं या मृत्यु के मुख में ही पहुँच जाते हैं। एक राजा को वैराग्य हो गया उसने राजकुमारों से कहा—पुत्रो ! मैंने काफी समय राज पाट भोगा, अब मेरी अवस्था भी काफी हो गई है और मेरा चित्त भी राज पाट के कामों से खिन्न रहने लगा है अतः तुम लोग गद्दी को सम्भालो, मैं तो जंगल में कुटिया बनाकर भगवद्भजन करूँगा। ऐसा कहकर जंगल में चला गया, वहाँ एक कुटिया बना ली और नदी के किनारे प्रभु का भजन करने लगा। एक दिन एक शेर ने एक गर्भवती हरिणी का पीछा किया। भयभीत हरिणी छलांगें मारती आई और उस नदी को छलांग कर जहाँ राजा का आसन लगा था वहीं गिर पड़ी। उसके बच्चा पैदा हुआ और हरिणी मर गई। राजा को बड़ी दया आई, उसने बच्चे को गोदी में उठा लिया, हरिण के बच्चे प्यारे तो होते ही हैं, राजा के हृदय से भी प्रेम उमड़ पड़ा और उसने कहा दस पाँच दिन में जब बच्चा कूदने फाँदने लायक हो जावेगा तो इसे जंगल में छोड़ दूँगे। राजा बच्चे को बड़े प्रेम से दूब घास खिलाने लगा बच्चा भी राजा को प्रेम करने लगा। खिलाने वाले से मनुष्यों को और पशुओं को सभी को प्रेम हो जाता है। कुछ समय बीत जाने पर राजा उसके मोह में फँस गया। जब राजा माला जपने बैठता तो बच्चा कभी राजा की पीठ चाटने लगता और कभी हाथ चाटने लगता। इस प्रकार राजा अधिक से अधिक उसके मोह पाश में बँध गया। जैसे जैसे बच्चा बड़ा होता गया वैसे वैसे राजा का प्रेम भी

बढ़ता गया। एक दिन दूब चरते चरते बच्चे ने हरिणों की पंक्ति को देखा और वह उनमें जा मिला क्योंकि कहा है।

मृगा मृगैःसङ्गमनुव्रजन्ति गावश्चगोभिस्तुरागास्तुरंगैः

मूर्खार्चमूर्खैः सुधियः सुधीभिः, समान शील व्यसनेषुसख्यम्

हरिण हरिणों से मिल जाते हैं गाय तथा घोड़े गाय घोड़ों में मिल जाते हैं मूर्ख मूर्खों के साथ और बुद्धिमान् बुद्धिमानों के साथ मिल जाते हैं क्योंकि जिनके शील और व्यसन समान होते हैं उनमें मैत्री हुआ करती है। इसलिये यह हरिण का बच्चा अपनी जाति के हरिणों में जा मिला।

राजा ने बड़ा बच्चे को तलाश किया किन्तु सारे जंगल में जब न मिला तो उसके हृदय को बड़ा दुःख हुआ। उस राग के कारण राजा बीमार हो गया और उसकी चिन्ता में ही कुछ समय के बाद मर गया। राग ऐसी ही भयंकर बीमारी है और बड़ी फँसावट है; इसही लिए इसकी यहाँ दोषों में गिनती की है, इससे बचाव के लिये बड़े भारी ज्ञान और प्रयत्न की आवश्यकता है। अपरिपक्व ज्ञान वालों को कभी सच्चा वैराग्य प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये राग के दोषों को भली प्रकार पहिचानना विवेकी मनुष्य का काम है। राग रहित होने के लिये ही योग की सारी प्रक्रिया है। वैराग्य शब्द का अर्थ भी राग रहित होना है। चित्तवृत्तियाँ जब प्रत्येक विषय से राग रहित हो जाती हैं उसही को वृत्ति निरोध कहते हैं। चित्तवृत्तियों का निरोध ही मुक्ति का द्वार है जहाँ संसार लुप्त हो जाता है।

शरीर तथा उसके अन्दर स्थित शक्तियों में

दोष दर्शन

यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने दोषों को पहिचाने, दोष एक प्रकार का आवरण है, काला पर्दा है, जिससे ज्ञान छिप जाता है। दोषों के कारण मनुष्य में हीनता बनी रहती है। दोष आत्मशक्ति को

उभरने नहीं देते, दोषी मनुष्य दोषों के कारण अच्छी बातों को पकड़ने में असमर्थ रहता है, इसलिये जो मनुष्य अपनी उन्नति चाहता है उसको पहिले अपने दोष दूर करने चाहियें। निर्दोष होने पर अच्छा-इयाँ मनुष्य में स्वतः प्रविष्ट होने लगती है। मनुष्य को परमात्मा ने शरीर शक्ति के साथ-साथ शरीर में रहने वाली अन्य शक्तियाँ भी दी हैं, उन शक्तियों के तथा शरीर के द्वारा मनुष्य अनेक शुभाशुभ कर्म करता है। यदि ये शक्तियाँ दोष दुष्टा हैं तो उनके द्वारा अशुभ कर्म किये जावेंगे और निर्दोष शक्तियों से भले कर्म किये जावेंगे, इसलिये मनुष्य को उचित है कि वह अपनी समस्त शक्तियों को दोष रहित बनाकर उनके द्वारा ही अपना उत्थान करे। अब यह जानना आवश्यक है कि हम अपनी किस-किस शक्ति से क्या-क्या कार्य करते हैं और उस-उस शक्ति के क्या-क्या दोष हैं, वो किस प्रकार निकल सकते सकते हैं और निर्दोष होने पर हम किस स्थिति को पहुँच सकते हैं। शरीर दोष, प्राण दोष, इन्द्रिय दोष, वाग्दोष मनोदोष बुद्धि दोष और आत्मदोष इन ७ प्रकार के दोषों के सम्बन्ध में हम विचार करेंगे। इन सभी दोषों से मुक्त होने पर ही हम सभी प्रकार की उन्नतियों को कर सकते हैं। दोषों का स्पष्टीकरण ध्यानपूर्वक हृदयङ्गम करें।

(प्रथम दोष) शरीर दोष

पहिले शरीर की स्थिति को हमें समझना है। आध्यात्मिक क्षेत्र में कुछ विद्वानों द्वारा शरीर की बड़ी निन्दा की गई है और इसको त्याज्य बताया है। कहते हैं—

अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणित लेपनम्
चर्मावनद्धं दुर्गन्धिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम्
रजस्वलमनित्यंच भूतावासमिमं त्यजेत्

अर्थात् इस शरीर में हड्डियों का ढाँचा बना हुआ है जैसे मकान बनाने के वास्ते पहिले लोहे के गर्डरों का ढाँचा खड़ा करना पड़ता है फिर ये शरीर नसों से जकड़ा हुआ है जैसे लोहे के ढाँचे को पतले-पतले तारों से बाँध दिया जाता है, फिर मांस और खून से इस पर लिप्पी की गई है, जैसे मकान का ह्वाइट वाश किया जाता है फिर यह पेशाब और पाखाने से परिपूर्ण है। बुढ़ापा और शोक इसको लगे हुए हैं, रोगों का यह मन्दिर है और भूख प्यास से सदा व्याकुल रहता है। जैसे रजस्वला स्त्री रजोधर्म से अपवित्र रहती है उसही प्रकार यह भी दूषित रजो गुणी वृत्तियों से भरा हुआ है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इनकी यह कृति है और अनित्य है, इस लिये ऐसे गन्दे शरीर को छोड़ देना चाहिये।

नीचे लिखे श्लोक में भी स्वामी शंकराचार्य ने ऐसा ही भाव व्यक्त कर इसको निन्द्य बताया है।

त्वङ्मांस रुधिर स्नायु मेदो मज्जास्थि संकुलम्
पूर्णं मूत्रपुरीषाभ्यां स्थूलं निन्द्यमिदं वपुः

अन्य किसी विद्वान् का वचन है।

स्थानाद् बीजादुपष्टम्भात् स्यन्दनान्निधनादपि
कायमाधेयशौचत्वात् परिणता ह्यशुचिं विदुः।

समस्त प्राणियों का जन्म किसी पवित्र स्थान से नहीं होता, रज वीर्य का संयुक्त रूप ही शरीरों की रचना का कारण है जो अपवित्र है। रक्त, मांस, चर्बी आदि भी इसके अन्दर अपवित्र ही हैं। अनेक प्रकार के पसीने जो इससे निकलते रहते हैं वो भी दुर्गन्धि युक्त ही है फिर मरने के बाद तो इसमें से दुर्गन्धि फूट निकलती है इस प्रकार लोगों ने व्यर्थही इसको पवित्र समझा हुआ है। वास्तव में पंडित लोगों की दृष्टि में तो यह अपवित्र ही है, किन्तु हम यह कहते हैं कि शरीर की जो स्थिति ऊपर बताई वह ठीक है किन्तु इसही शरीर रूपी खोल

में हमारी अमूल्य निधि इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और आत्मा भी तो स्थित हैं इसही लिये कहा—

“शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्”

इस शरीर के द्वारा ही तो सुकर्म किये जाते हैं, धर्मानुष्ठान, तपश्चर्या, ज्ञान विज्ञान की उन्नति तथा मुक्ति की प्राप्ति भी तो इसही शरीर से की जाती है। शरीर वियुक्त आत्मा तो इस शरीर रूपी साधन के बिना कुछ भी नहीं कर सकता इसलिये इसको निर्दोष बनाना ही जीवन का परम लक्ष्य है। जिस प्रकार गन्दे दुर्गन्धि युक्त खाद और पानी से प्राकृतिक अन्न, फल, फूल पौष्टिक, स्वादिष्ट, सुगन्धित और रमणीय पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं उसही प्रकार इस शरीर से भी प्राकृतिक और अप्राकृतिक विभूतियाँ प्राप्त की जाती हैं। प्रभु की प्राप्ति भी इस शरीर से साधना किये बिना नहीं हो सकती। कहने का तात्पर्य यह है कि हम शरीर को कभी निन्द्य न समझें बल्कि इसको निर्दोष बनाकर जीवन में लाभ उठावें। शरीर से तीन जघन्य पाप पापी व्यक्ति किया करते हैं, हम उन दोषों को निकाल कर इस शरीर को पवित्र बनावें।

(प्रथम) शरीर दोष

अदत्तानामुपादानं हिंसाचैवाविधानतः

परदारोपसेवाच शरीरं त्रिविधं स्मृतम्।

(१) चोरी करना (२) विधान रहित हिंसा का करना और (३) पर-स्त्री गमन, ये तीन शरीर के बड़े दोष हैं इनसे बचने की बड़ी आवश्यकता है।

यदि ये तीनों दोष संसार में विस्तृत रूप से फैल जावें तो संसार का कोई भी व्यवहार शान्तिपूर्वक नहीं चल सकता बल्कि संसार कायम ही नहीं रह सकता। सबके सुधार से पहिले शरीर का सुधार बढ़ा

आवश्यक है। इसके सुधार के बिना अन्य सुधार होने ही कठिन हैं। शरीर की स्थिति खाने पीने से बनी हुई है। जैसा हमारा खान पान होगा वैसा ही शरीर बन जावेगा क्योंकि यह भौतिक है। पौष्टिक शुद्ध तथा सात्विक पदार्थों के सेवन से कर्म योग के लिए उपयुक्त, शुद्ध तथा सात्विक बनाना ही हमारा कर्तव्य है।

यदि पवित्रता इसमें आ गई तो चोरी, हिंसा और व्यभिचार दोष स्वयं मिट जावेंगे। लोग समझते हैं मछली, मांस, अण्डे और दूषित नशीली चीजें खाने और शराब के पीने के बाद भी हम धर्मात्मा बने रहेंगे, इससे चित्तवृत्ति दूषित नहीं होगी, हम धर्मानुष्ठान कर पाएंगे हमारी वृत्तियों में कोई दोष नहीं आवेगा यह बहुत ही बड़ी भ्रांत धारणा है। मैं तो कहता हूँ लहसुन और प्याज खाने वाला आदमी भी अपने अन्दर पवित्र विचारों को पैदा नहीं कर सकता, इसलिये अध्यात्म मार्ग पर जाने वाले व्यक्तियों के लिये राजस और तामस पदार्थों का सेवन बिल्कुल निषिद्ध है। लोग अपने अभ्यास और जिह्वालौल्य (स्वाद) के कारण ही इन चीजों को बुरा समझते हुए भी इनसे बरी नहीं हो पाते, ऐसे लोगों को आध्यात्मिक मार्ग का पथिक बनना ही नहीं चाहिये अन्यथा यह कोरी विडम्बना ही होगी। इस दोष से भारतीय साधनाश्रम भी मुक्त नहीं हैं। चोरी करना किसी की आँख बचा कर माल उड़ा लेना, किसी की जेब काट लेना, कहीं सेंध (कूमल) लगा कर रात को चोरी कर लेना ही चोरी नहीं है बल्कि किसी के अधिकार को छीनना, मीठी-मीठी बातों के प्रलोभन से किसी के धन का अपहरण करना, किसी को मित्र बना कर अपने मतलब के लिये कर्ज देते रहना और फिर उसकी सारी सम्पत्ति को हड़प जाना आदि सभी चोरी के रूप हैं। चोरी और बेईमानी में थोड़ा ही अन्तर है। चोरी की भावना मन में आने के बाद ही बेईमानी को स्थान मिलता है। यदि चोरी की भावना मन में न हो तो आदमी बेईमानी कर ही नहीं सकता। इस ही प्रकार किसी का गला काटना, किसी को भयानक यातना देना ही हिंसा नहीं है

बल्कि मन से भी किसी का अनिष्ट सोचना, बिना मारे भी किसी को शक्तिहीन बना देना, किसी भी खाद्य अथवा पेय पदार्थ में स्लो प्वाइजन (हलका जहर) दे डालना जिससे व्यक्ति धीरे-धीरे समाप्त हो जावे, किसी के साथ बुरे से बुरा व्यवहार करना, गाली गलौज से पेश आना आदि कार्य जिससे आत्मा को मन को तथा हृदय को कष्ट पहुँचे सभी हिंसा में आते हैं। शास्त्र विहित हिंसा को हिंसा दोष से मुक्त रखा गया है और उसमें पाप भी नहीं माना है जैसे—

अग्निदो, गर्दश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः

क्षेत्रदारहरश्चैव पडेते आततायिनः

अर्थात्—घर में, खलिहान (अन्न का ढेर) अथवा अन्य किसी भी स्थान तथा किसी भी वस्तु में आग लगाने वाला, किसी भी प्रकार से खाद्य अथवा पेय पदार्थों में जहर मिलाने वाला, हथियार लेकर हिंसा में प्रवृत्त, धन का अपहरण करने वाला, खेतों को काटने वाला और स्त्रियों का अपहरण करने वाला ये छः आततायि गिनाए हैं इनके लिये मनु भगवान् आज्ञा करते हैं कि—

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाऽविचारयन्”

अर्थात् इन छः प्रकार के आततायियों को आता हुआ देखो तो बिना विचारे मार डालो। इनकी हिंसा में कोई दोष कोई अधर्म नहीं है। यही अर्थ “हिंसाचैवाविधानतः” का है दूसरे की स्त्रियों के साथ सम्पर्क बढ़ाकर यूरोपियन ढंग से अनाचार को फैलाना सबसे बड़ा शारीरिक दोष है। व्यभिचार दोष को सबसे बढ़कर इसलिये कहा गया है कि इस दोष के आने पर मनुष्य में सभी दोष आ जाते हैं। अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिये मनुष्य के खर्चे बढ़ जाते हैं और फिर उचित अनुचित मार्ग से मनुष्य भूँठ, बेईमानी, हिंसा आदि बुरे से बुरे कामों में प्रवृत्त होकर अपने शरीर, धन, प्रतिष्ठा सभी को समाप्त कर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। कामुक प्रवृत्तियों का दास

बनकर मछली, मांस अण्डे मदिरा तथा नशीली उत्तेजक वस्तुओं का सेवन करता है। इस मूल दोष के कारण सभी प्रकार के दोष मनुष्य में आ जाते हैं। ये ३ प्रकार के शारीरिक दोष गिनाए, इनसे मुक्ति पाने के लिये बड़ी गम्भीरता से सोच विचार कर केवल शुद्ध सात्विक आहार का ही आश्रय लेना होगा।

(तृतीय दोष) प्राणदोष

शरीर को चलाने वाली सबसे बड़ी शक्ति का नाम प्राण शक्ति है, जिन लोगों में प्राण शक्ति नहीं होती उनका जीवन बड़ी जल्दी समाप्त हो जाता है। संसार में प्रायः देखने में आता है कि बड़े-बड़े तगड़े और मोटे ताजे बलिष्ठ शरीर भी प्राण शक्ति के अभाव में असमय ही काल के गाल में चले जाते हैं। श्वास के आने जाने को ही लोग प्राण समझते हैं यह उनकी भ्रान्त धारणा है। जो लोग इस शक्ति के महत्व को समझते हैं वो प्राणशक्ति के बढ़ाने की चेष्टा करते हैं। प्राणों का प्राणायाम रहित होना ही प्राण दोष है।

दहन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथामलाः

तथेन्द्रियाणां दहन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्

अर्थात् जैसे सुनार अग्नि में तपाकर धातुओं के मल को निकाल देता है उसही प्रकार प्राणों के निग्रह करने से इन्द्रियों के सारे दोष मस्मीभूत हो जाते हैं किन्तु यह तभी संभव है जब प्राण स्वयं निर्दोष हों।

प्राणों के दोष प्राणायाम से ही दूर होते हैं।

प्राणायामैर्दहेदोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्

प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्

अर्थ—प्राणायाम से रागादि दोषों को, धारणा से पाप को, इन्द्रिय संयम से विषयों के संसर्ग को और ध्यानसे काम, क्रोध, लोभ मोहादि दोषों को भस्म करे। दोष रहित प्राण जब वश में हो जाता है तो वह इन्द्रियों के दोषों को भी खा जाता है।

जब तक दोष बने रहते हैं मनुष्य के ऊँच से ऊँच काम भी तब तक असिद्ध ही रहते हैं।

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च

न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्

वेदों का स्वाध्याय, त्याग का भाव, यज्ञों का करना नियमों का पालन, तपश्चर्या का करना ये सब उस मनुष्य के विफल हो जाते हैं जिसके अन्दर दुष्ट भाव बने हुए हैं इसलिये अंकाइयां प्राप्त करने के लिये सभी दोषों से मुक्त होना ही पड़ेगा।

प्राणों के निरोध से यानी प्राणायाम से शरीर और इन्द्रियां दोनों ही काबू में हो जाते हैं, आयु बढ़ती है, तपेदिक आदि रोग कभी नहीं हो पाते, मन पर अंकुश लगा रहता है इस तरह प्राणों को भी निर्दोष बनाना परम आवश्यक है।

(तीसरा दोष) वाग्दोष

9349

वाणी एक कर्मेन्द्रिय है। सभी कर्मेन्द्रियों में इसको प्रमुख स्थान मिला हुआ है क्योंकि यह सभी ज्ञानेन्द्रियों के कार्यों को प्रकाश में लाती है। यदि वाग् इन्द्रिय न हो तो ज्ञान एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच ही नहीं सकता। जो कुछ हम आँख से देखते हैं उसका वर्णन वाणी से ही किया जाता है। जो कुछ हम सुनते हैं उसको वाणी द्वारा ही दूसरों को सुनाते हैं। जो कुछ हम चखते हैं उसके मंले घुरे का वर्णन वाणी से ही करते हैं। जो कुछ हम सुगन्ध और दुर्गन्ध सूँघते हैं उसकी प्राप्ति और निषेध के लिये भी वाणी को ही प्रयोग में लाते हैं। जो कुछ हम स्पर्श द्वारा ठंडा गरम, मुलायम सख्त अनुभव में लाते हैं उसका व्यावहारिक वर्णन भी वाणी द्वारा ही होता है इसलिये कर्मेन्द्रियों में वाणी का स्थान प्रमुख है।

वाणी दोषरहिता बड़ी गुणवती होती है इसमें बड़ा भारी आक-

पण है, सबको अपनाने की शक्ति है। पवित्र वाणी से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। वाणी और मन की पवित्रता मिलकर मनुष्य को ऊँचा उठा देती है।

वाङ् में मनसि प्रतिष्ठिता, मनोमे वाचि प्रतिष्ठितम्
आविरावीर्मएधि वेदस्य म आणीस्थः श्रुतंमे माप्रहासीः
अनेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधाम्यृतंवदिष्यामि सत्यं
वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतुमावतु वक्तारम्

इस मन्त्र में वाणी और मन की एकता का वर्णन किया है जो मन से विचारा जाय वही वाणी से बोला भी जावे। लोक में प्रायः इसके विपरीत बात देखी जाती है मन में कुछ होता है और वाणी से मनुष्य कुछ बोलते हैं यह वाणी का बड़ा दोष है, जो दुरात्माओं में पाया जाता है। पवित्रात्मा व्यक्तियों के मन वचन एक ही होते हैं।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्
मनस्यन्यद् वचस्यन्यद् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्

साधु, सन्त, महात्मा और धार्मिक व्यक्ति मन, वचन और कर्म में एक होते हैं किन्तु दुरात्माओं के मन वचन और कर्म सभी भिन्न-भिन्न होते हैं। ऊँचाई की निशानी यही है कि—

यन्मनसाध्यायेत् तद्वाचावदेत्. यद्वाचावदेत् तत्कर्मणाकुर्यात्

मन में जैसा सोचे वैसा ही वाणी से बोले जैसा वाणी से बोले वैसा ही करके दिखावे। मन वचन कर्म में एकता होने से वाणी की शोभा होती है और वाणी निर्दोष मानी जाती है। इक्ष्वाकु वंश के राजाओं का यह जीवन व्रत था—

रघुकुल रीति सदा चली आई

प्राण जाँय पर वचन न जाई

इसही लिये रघुवंशी राजाओं ने भारत पर ही नहीं सार्वभौम

राज्य संसार में बड़े लम्बे समय तक किया। इस समय अपने वचनों से मुकर जाना एक साधारण सी बात है। छोटे-छोटे व्यक्तियों में नहीं बल्कि यह रोग बड़े से बड़े व्यक्तियों में, शासकों में और साधु महात्मा कहे जाने वाले लोगों में भी पाया जाता है। इसका परिणाम भविष्य में बड़ा भयंकर होगा। वचन भंग भूँठ का ही दूसरा स्वरूप है जो “नानृतात्पातकं परम्” के अनुसार सबसे बड़ा पाप है। वर्तमान में भी इससे दारुण दुःख लोगों को उठाने पड़ रहे हैं। पहिले समय के भारतीय लोग सिर कटवाना पसन्द करते थे किन्तु भूँठ कभी नहीं बोलते थे, वो अपनी वाणी का गौरव कायम रखते थे। इसलिये वाणी के दोष को समूल नष्ट कर देना चाहिये।

वाणी के ४ भयानक दोष भी हैं इनको दूर करना भी परमावश्यक है।

पारुष्यमनृतंचैव पैशुन्यंचापि सर्वशः
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयस्यान्वतुर्विधम्

अर्थ—वाणी का रूखापन, भूँठ बोलना, चुगली खाना और व्यर्थ की बकवाद करना ये ४ वाणी के भयानक दोष माने गए हैं। इन दोषों से मुक्त हुई वाणी ही पूजा का और स्नेह का स्थान ग्रहण करती है। संसार में बड़े-बड़े झगड़े और बखेड़े इस वाणी के द्वारा ही खड़े हो जाते हैं। महाभारत जैसा भयानक युद्ध इस वाणी के कारण ही हुआ। द्रौपदी यदि दुर्योधन के प्रति “अन्धे के अन्धे ही होते हैं” इन शब्दों का प्रयोग न करती तो शायद महाभारत का युद्ध ही न होता। इसही लिये वेद में वाणी संशोधन की और उसके मिठास की बड़ी चर्चा है।

मधुमन्मेनिष्क्रमणं मधुमन्मे परायणम्

वाचावदामि मधुमद् भूयासं मधु सन्दृशः

मिठास के साथ ही मेरा घर से निकलना हो और मिठास के

साथ ही घर में आना हो, अपनी वाणी से मैं मीठा ही बोलूँ और मेरी वाणी शत्रु के समान मीठी बनी रहे। वास्तव में मीठा बोलने में एक मोहक शक्ति है। मीठा बोलने वाले आदमी के शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। मीठी वाणी बोलने वाले मनुष्य के संसार में सारे काम आसानी से हो जाते हैं। कड़वा बोलने वाला अपने मित्रों को भी दुश्मन बना लेता है, उस व्यक्ति को भी हमेशा क्रोध और अप्रसन्नता बने रहते हैं। कड़वा बोलने वाला कहीं प्रतिष्ठा नहीं पाता इसलिये वाणी का रूखापन बहुत ही खराब है। दूसरा दोष वाणी का भूँठ बोलना है। बहुत से लोगों को अभ्यास के कारण भूँठ बोलने का शौक हो जाता है, वो बात-बात में भूँठ बोलते हैं, वेमतलब भूँठ बोलते रहते हैं, भूँठ बोलने के कारण ही लाखों मुकदमे संसार में चलते रहते हैं। कचहरियों में गंगा स्नान का जैसा मला लगा रहता है। इस वाणी के द्वारा भूँठ का ऐसा प्रचार हुआ है कि बड़े छोटे, शिक्षित अशिक्षित, शासक प्रजा, स्त्री, पुरुष, बच्चे, बुढ़े सभी इससे प्रभावित हो गये हैं कि लाखों में भी कोई व्यक्ति ही सत्यवादी नज़र आवेगा। भूँठ के कारण ही बेईमानी भी पनप गई है इसलिये ईमानदार लोग भी नज़र नहीं आते। किसी महकमे में जाइये, किसी से व्यवहार कीजिये, किसी को उधार रुपया देकर देखिये, किसी से वास्ता डालिये, बड़े छोटों को परखिये, धनी निर्धन को देखिये विद्वान् अविद्वान् को जांचिये, इस मामले में सबका धर्म एक ही पावेंगे। वाणी के इस दोष से सारा संसार ही भ्रष्ट हो गया है अतः वाणी का यह दोष मिटना ही चाहिये। सत्य का व्रत लेने से ही यह दोष मिट सकता है, तीसरा दोष वाणी का चुगलखोरी है। बहुत लोग संसार में परदोष दर्शन करते रहते हैं और उससे ही प्रसन्नता अनुभव करते हैं। दूसरों के साधारण दोषों को भी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर दूसरों के सामने पेश करते हैं बल्कि बहुत सी भूँठी बातों को भी शामिल करके दूसरों का अनिष्ट करने का प्रयत्न करते रहते हैं। इस प्रकार प्रति समय दोषदर्शन के कारण उनकी अपनी वज्रियां ही दोष

दुष्टा हो जाती हैं और वो दूसरों का अनिष्ट करने के स्थान पर अपना ही अनिष्ट कर डालते हैं। चुगलखोर को सभी लोग बुरी दृष्टि से देखते हैं, यह भी वाणी का ही दोष है। यह भी वाणी से अवश्य भिटना चाहिये। चौथा दोष वाणी का असम्बद्ध प्रलाप है जिसको हिन्दी में बकवाद कहा जाता है। हर समय बेतुकी बातें करते रहना, बेसिर पैर की बातों को करके लोगों में अपने को बड़ा जतलाने की कोशिश करना, मतलब और काम की कोई बात न हो व्यर्थ की झूठी सच्ची बातों में अपने समय को नष्ट करना ही असम्बद्ध प्रलाप है। जिसे लोग कहते हैं यह वहकी वहकी बातें करता है। जो वाणी प्रभु ने सुन्दर भावों को व्यक्त करने के लिये बनाई जिससे प्रभु का नाम स्मरण होता है, जिस वाणी से लोक कल्याण किया जाता है उस वाणी का बुरी बातों में प्रयोग करना ही वाणी का दोष कहा जाता है, अतः इस दोष को भी चिन्तन के साथ दूर करना चाहिये। इन दोषों को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि मनुष्य कम बोलने का व्रत ले, अधिक समय मौन धारण करे और लोगों से कम सम्पर्क रखे, इससे वाणी पर कन्ट्रोल हो जावेगा। वाणी के इन चार दोषों के दूर होने पर वाणी में पवित्रता आजावेगी।

(चौथा) इन्द्रिय दोष

पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का अपने अपने पाँचों विषयों में आसक्त होना ही ज्ञानेन्द्रिय दोष है। परमात्मा ने हमें महाशक्ति के रूप में ये पाँच इन्द्रियाँ दी हैं जिनसे हम अच्छा देखें, अच्छा सुनें, अच्छा चखें, अच्छा सूँघें और दोष रहित स्पर्श करें। वेद में कहा—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः

अर्थात् हम आँखों से ऐसा देखें जिससे हमारा कल्याण हो। कानों से हम ऐसा सुनें जिससे हमारा कल्याण हो। किन्तु इन्द्रिय दोषों के कारण हम बुरे से बुरा देखना पसन्द करते हैं। सिनेमा के नग्न चित्रों को देखने में हमें आनन्द अनुभव होता है। सिनेमा के अश्लील

गन्दे गानों के सुनने में हमें अभिरुचि होती है। खाना पीना और सूँघना भी हम वही पसन्द करते हैं जिससे हमें उक्त जना मिले और कामासक्ति हमारी बनी रहे। स्पर्श इन्द्रिय तो इसकी साधन है ही। इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का बड़ा महत्व है और ये हमारी अमूल्य निधि हैं। आँखों का मूल्य उस व्यक्ति से पूछिये जो पहिले समाखा हो और फिर अन्धा हो गया हो, उस कष्ट को वही अनुभव करता है। जो व्यक्ति सुनते सुनते बहरा हो गया हो उससे श्रोत्र इन्द्रिय का मूल्य मालूम कीजिए। शास्त्रकार इन इन्द्रियों का सदुपयोग बताते हैं और दुरुपयोग का निषेध करते हैं। सदुपयोग से सुख, शान्ति मिलती है और दुरुपयोग से दुःख और अशान्ति मिलती है। विवेकहीन मनुष्य अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का गुलाम हो जाता है जब कि एक एक इन्द्रिय ही इसके विनाश के लिए पर्याप्त है।

शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च पञ्चत्वमापुः स्वगुणेन बद्धाः

कुरङ्ग मातङ्ग पतङ्ग मीन भृङ्गा नरः पञ्चभिरञ्चितः किम्

अर्थात् एक एक इन्द्रिय के वशीभूत होकर हरिण, हाथी, पतंगे, मछली और भौरे पकड़े जाते हैं या मारे जाते हैं। फिर सोचिये जिस मनुष्य की पाँचों इन्द्रियाँ ही वश में न हों उसकी क्या दशा होगी। सुन्दर शब्द से हरिण पकड़ा जाता है। बीन बजाकर सपेरे साँप को पकड़ लेते हैं क्योंकि बीन की आवाज़ पर मुग्ध हुआ साँप बिल से निकल कर बाहर खड़ा हो जाता है। कामेन्द्रिय के द्वारा हाथी पकड़ा जाता है यह स्पर्शेन्द्रिय का गुलाम है। रूप का दीवाना पतंग वक्ती पर अपना जीवन समाप्त कर देता है। इसके अधीन मछली जब रसना से कांटे में लगे मांस के टुकड़े या आटे को मुख में लेती है तो अपने प्राण गंवा बैठती है और गन्ध का शौकीन भौरा जो वाँसों के अन्दर छेद करने की शक्ति रखता है, कोमल कमल के फूल के अन्दर रात्रि को गंवा देता है।

दोषों की भी चार अवस्थाएं होती हैं सीमा के अन्दर बंधे इन्द्रियों के विषय दुःखदायी नहीं होते। आँख देखेगी और कान सुनेंगे क्योंकि उनमें ये शक्तियाँ मौजूद हैं और इन्हें परमात्मा ने मनुष्य के सुख का साधन बनाकर दिया है। उदाहरण के तौर पर स्पर्श शक्ति का फल काम है इसकी ४ स्थितियाँ हैं—(१) कामशक्ति, (२) काम क्रिया, (३) कामासक्ति, (४) काम-निरोध। प्रत्येक इन्द्रिय की शक्ति के बिना तो मनुष्य का जीवन ही व्यर्थ है अतः वह आवश्यक है और उससे परम सुख तभी मिल सकता है जब शक्ति कायम रहे। दूसरी क्रिया, वह क्रिया भी सीमा के और मर्यादा के अन्दर बड़ी अच्छी चीज़ है क्योंकि बिना क्रिया के अन्दर निहित शक्ति ही बेकार हो जाती है। तीसरी आसक्ति है, जिसे शास्त्रों ने बुरा बताया है, क्योंकि प्रत्येक विषय की आसक्ति से ही मनुष्य को कष्ट पहुँचता है। किसी इन्द्रिय की विषय के प्रति आसक्ति नहीं होनी चाहिये। चौथा है निरोध, जिसे कंट्रोल कहते हैं। समस्त वैषयिक शक्तियों के होते हुए भी उन पर कंट्रोल करके या उनका निरोध करके उनसे सुख प्राप्त करना ही इन्द्रियों की निर्दोषता या उन पर विजय है। बहुत से इन इन्द्रियों से परेशान होकर उनको नष्ट कर देते हैं। उनका विचार होता है कि यदि आँख ने बुरा देखा है तो आँख को ही फोड़ डालो जैसा सूरदासजी ने किया। बहुत से कामासक्ति का दोष मूर्ख इन्द्रिय पर डाल देते हैं और उसे काट डालते हैं किन्तु ये कार्य बुद्धिमत्ता के नहीं। क्या इन इन्द्रियों को काट डालने या नष्ट कर देने के बाद भी किसी की मनोविकृतियाँ कभी नष्ट हुई हैं। ये विकार तो मन को पवित्र बनाने से ही दूर हो सकते हैं क्योंकि संकल्प विकल्प करना मन का धर्म है। मन भी तभी पवित्र हो सकता है जब आत्मा के अन्दर दुर्वासनाएं, कुसंस्कार और अज्ञान न रहे तभी बुद्धि में भी पवित्रता आती है और मन भी पवित्र हो जाता है। यही इन्द्रियों को निर्दोष तथा पवित्र बनाने का तरीका है।

(पाचवां दोष) मनोदोष

मन को बहुत बड़ी शक्ति शास्त्रकारों ने कहा है। इन्द्रिय रूपी घोड़े मन रूपी लगाम से ही वश में रखे जा सकते हैं किन्तु यदि मन ही अपवित्र हो तो इन्द्रियां कुसार्ग पर जाने से कमी नहीं रुक सकती। मन सभी इन्द्रियों का अधिष्ठान है। मन २ प्रकार का है एक पवित्र दूसरा अपवित्र—

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च

अशुद्धं काममंकल्पं शुद्धं कामविवर्जितम्

कामनाओं के संकलों से भरा हुआ मन अपवित्र है क्योंकि वह सांसारिक इच्छाओं में फंसा होता है। सांसारिक इच्छाओं का कहीं अन्त नहीं—कोई १ लाख कमा लेता है तो दूसरे लाख की कामना फौरन सामने आकर खड़ी हो जाती है। एक कोठी बन जाती है तो दूसरी कोठी की कामना होती है, कपड़े की एक मिल खड़ी हो जाती है तो दूसरी बिस्कुट की फैक्ट्री और चालू करने की इच्छा पैदा हो जाती है। इस प्रकार करोड़ों और अरबों की सम्पत्ति प्राप्त करने के बाद भी कामनाएं नौजवान ही बनी रहती हैं, उनमें बुढ़ापा कमी आता ही नहीं। जहां कामनाएं हैं वहीं फंसावट है। चूंकि कामनाओं का अंत नहीं अतः फंसावटों का भी अन्त नहीं। फंसावट ही बन्धन है और बन्धन ही दुःख है। दुःखों का मारा प्राणी दुःख को नहीं पहिचान सकता। इतना परिश्रम करने के बाद भी धन और सम्पत्ति किसी के साथ नहीं जाती, रोता हुआ आदमी सब कुछ यहीं छोड़कर हाथ मलता हुआ संसार से विदा हो जाता है।

कामानां हृदयेवासः संसार इति कीर्तितः

तेषां सर्वात्मना नाशः मोक्ष उक्तो मनीषिभिः।

कामनाओं का हृदय में निवास ही तो संसार है। जो कामनाओं को छाड़ बैठते हैं उनसे संसार छूट जाता है। संसार के छूटते ही प्रभु का निवास हृदय में हा जाता है। समस्त कामनाओं की निवृत्ति ही तो मोक्ष है। बादशाह सिकन्दर अनेक देशों को जीतकर भी सन्तुष्ट न हुआ, मरते हुए अपने दोनों हाथों को कंकन से बाहर रखने को उसने आज्ञा दी, जिससे संसार शिवा ले सके कि सिकन्दर आज्ञा सब कुछ जीतने के बाद भी संसार से हार कर खाली हाथ जा रहा है। मुहम्मद ग़ज़नवी अतुल धनराशि भारत से लूट कर ग़ज़नी ले गया। उसके प्राण सम्पत्ति में ही फँस गए। मरते समय सारे हीरे जवाहिरात और सोने की ढेरी अपने सामने लगवा दी। तृष्णा भरी आँखों से देखकर फूट फूट कर रोने लगा, मानो कह रहा है कि हाय ! अपने पापों को, कत्ले आसों को करके मैंने इस सम्पत्ति को बटोरा किन्तु अन्तिम समय यह मेरा साथ छोड़ बैठी। लाखों सिकन्दर और ग़ज़नवी दुनिया में आए और हाथ मलते ही चले गए। मगर दुनियाँ को होश न आया न आएगा। यह संसार ऐसा ही चलता आया है और ऐसा ही चलता जायेगा, क्योंकि कामनाओं की कीचड़ में से करोड़ों में कोई व्यक्ति ही निकल पाता है। यही मन का बड़ा भारी दोष है। जब कामनाओं का सर्वात्मना नाश हो जाना है तो मन निर्दोष होकर निर्मल हो जाता है और तभी वह दुःख रहित मोक्ष का अधिकारी होता है। मन ही मनुष्य को दुःखों में जकड़ देता है और मन के द्वारा ही दुःखों से छुटकारा भी प्राप्त किया जाता है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः

बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ।

बुरी कामनाओं में और विषयों में फँसा प्राणी बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता। ये दोनों बड़े बन्धन हैं। मुक्ति के लिए तो निर्विषय मन ही कारण है। इसलिए जो व्यक्ति दुःखों से छुटकारा चाहता है उसे मन को निर्दोष बनाना ही पड़ेगा। उसकी एक ही बड़ी प्रक्रिया है।

केवल सत्य का श्रवण, सत्य का चिन्तन, सत्य का भाषण और सत्य का ही अनुष्ठान करने का व्रत मनुष्य ले ले, इससे मन शुद्ध हो जायेगा। शुद्ध मन से दुष्कामनाएँ स्वयं निकल जावेंगी और ऐसा ही मन मुक्ति मार्ग में जाने के योग्य समझा जावेगा। मनु जो कहते हैं—

“मनः सत्येन शुद्ध्यति”

यद्यपि हम कामनाओं को बुरा नहीं कहते क्योंकि बिना कामनाओं के तो संसार में कोई शुभ कार्य भी नहीं हो सकता, विरोध तो केवल वैषयिक कामासक्ति का है।

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता
काम्योहि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः

वेदाध्ययन में प्रवृत्ति बिना कामना के नहीं होती और वेद प्रति पादित शुभ कर्मों का तथा यज्ञादि का अनुष्ठान भी बिना कामना के नहीं हो सकता, मुक्ति के लिए भी कामना ही करनी पड़ती है इसलिये “कामात्मता” अर्थात् कामासक्ति की ही निन्दा है। बहुत से लोग कर्मों को ही बन्धन का कारण बताते हैं इसलिये कर्म और कामना रहित होकर वो संसार से मुक्त होना चाहते हैं किन्तु यह भ्रान्त धारणा है। पहिले तो कोई संसार में एक क्षण के लिए भी कर्म रहित नहीं रह सकता फिर योगाभ्यास, तपश्चर्या आदि क्रियाएँ भी तो कर्म ही हैं। विशेषता तो यही है कि कर्मों को करता हुआ भी कर्मों के बन्धन में न फँसे, यही निष्काम कर्मयोग है। बुरी कामनाएँ मन में ही उठती हैं और अच्छे संकल्प भी मन के द्वारा ही होते हैं।

तस्मान्मनः कारणमस्यजन्तो

बन्धस्य मोक्षस्य च वा विधाने

बन्धस्य हेतुर्मलिनं रजोगुणैः

मोक्षस्य शुद्धं विरजस्तमस्कम्

इसलिये इस जीव के बन्धन और मोक्ष के प्रतिपादन में मन ही कारण है। रजोगुण से मलिन हुआ मन बन्ध का कारण होता है, और रजोगुण और तमोगुण से रहित सात्विक शुद्ध मन मोक्ष का कारण होता है।

वायुनाऽऽनीयते मेघः पुनस्तेनैव नीयते

मनसा कल्प्यते बन्धः मोक्षस्तेनैव कल्प्यते

जैसे वायु के द्वारा मेघ आता है और फिर उसी के द्वारा चला जाता है, इसी प्रकार मन से बन्ध की कल्पना होती है और मन से ही मोक्ष की भी। मन की भिन्न-भिन्न शक्तियों के कारण ही संसार में भिन्नता नज़र आती है। वेद कहता है—

अक्षयन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वासमा बभूवुः

आंख कान तो सभी व्यक्तियों के समान होते हैं किन्तु मनोवेगों की भिन्नता के कारण संसार में असमानताएं उपस्थित हो जाती हैं। यह मन की शक्ति का ही अद्भुत चमत्कार है। इसलिये—

तन्मनः शोधनं कार्यं प्रयत्नेन मुमुक्षुणा

विशुद्धे सति चैतस्मिन् भुक्तिः करफलायते

इसलिये जो व्यक्ति मुक्ति की इच्छा करे उसको बड़े प्रयत्न के साथ मन को शुद्ध करना चाहिये। मन के शुद्ध हो जाने पर मुक्ति हाथ में रखे फल की तरह प्राप्त हो जाती है :

(छठा) बुद्धि दोष

भले बुरे का निश्चय करने वाली बुद्धि ही है। सारे संसार में बुद्धि का ही चमत्कार है। जितने शुभ कार्य ऊँचे दर्जे के संसार में नज़र आ रहे हैं उन सभी में बुद्धि का चमत्कार ही नज़र आता है। संसार में बुद्धिमान् न हों तो संसार में अंधेरा हो जावे, उन्नति बन्द

हो जावे, कष्टों का कुछ ठिकाना न रहे। बुद्धिहीन लोग संसार से बुद्धिमानों को ही नष्ट करने की चेष्टा करते हैं क्योंकि बुद्धिमानों के सामने अवोधों की दाल नहीं गलती, उनका स्वाथ कुम्हला जाता है। बुद्धिहीनों ने बुद्धि दोष के कारण बड़े बड़े अनर्थ किये हैं। बड़े बड़े ज्ञान भंडारों को आग लगाकर भस्मसात् किया गया है। बड़े बड़े ज्ञानी बुद्धिमान लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया है। बड़े बड़े विद्यालयों को उनमें ज्ञान की दीक्षा देने वाले बड़े बड़े मस्तिष्कों को बड़े बड़े कष्ट देकर समाप्त किया गया है। संसार की हिस्ट्री को उठाकर देखिये। ग्रन्थ का यह विषय नहीं इसलिये इस पर अधिक नहीं लिख रहे।

बुद्धि का रजो गुणी और तमोगुणी होना ही बुद्धि दोष है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति में सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण तीनों ही विद्यमान रहते हैं और इन तीनों को दूर किया ही नहीं जा सकता। मनुष्य का जीवन ही इन तीनों में निहित है। रजोगुण न हो तो क्रियाशीलता और स्फूर्ति मनुष्य में रहेगी ही नहीं। तमोगुण न हो तो निद्रा का अभाव ही हो जावेगा। सतोगुण न हो तो सद्बिचारों की उत्पत्ति ही समाप्त हो जावेगी और दुनियाँ से अच्छे कार्य ही समाप्त हो जावेंगे क्योंकि सारे संसार की उत्पत्ति ही इनसे हुई है, किन्तु जब रजोगुण और तमोगुण बड़ी मात्रा में विकसित हो जाते हैं तो सतोगुण दब जाता है। रजोगुण से तो आदमी कामनाओं की भंवर में फंस जाता है और तमोगुणी निद्रा, आलस्य और प्रमाद में फंस कर अपने को नष्ट कर डालता है और संसार भी ऐसे लोगों से पथभ्रष्ट हो जाता है इसलिये बुद्धि में सतोगुण की प्रधानता होनी चाहिए तभी बुद्धि को निर्दोष माना जावेगा। गीता में तीनों प्रकार की बुद्धियों का वर्णन इस प्रकार है। (१) सतोगुणी बुद्धि—

प्रवृत्तिच निवृत्तिच कार्याकार्येभ्याभये

बन्धमोक्षं च यावेत्ति बुद्धिः सापार्थ सात्विकी

अर्थात् सात्विकी बुद्धि से ही मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति के मार्गों को पहिचानता है, करने के काम और न करने के कामों को परखता है, किस काम के करने में भय और किसमें निर्भयता है इसको समझता है और बन्धन की और मोक्ष की नीचाइयों और ऊँचाइयों को भी वही समझ सकता है यही सात्विकी बुद्धि का लक्षण है।

(२) रजोगुणी बुद्धि—

यथाधर्ममधर्मच कार्यचाकार्यमेवच

अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी

अर्थात् जो धर्म तथा अधर्म एवं क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए इसमें पूरा-पूरा विवेक ही न कर पावे वह राजसी बुद्धि होती है। राजसी बुद्धि वाले लोग कुछ अच्छे काम कर जाते हैं कुछ बुरे, इस प्रकार उन्हें निश्चयपूर्वक मले बुरे कामों का ज्ञान नहीं होता यह भी बुद्धि का दोष है।

(३) तामसी बुद्धि—

अधर्म धर्ममिति या मन्यते तमसावृता

सर्वार्थान् विपरीतारच बुद्धिः सा पार्थ तामसी

तामसी बुद्धि वाले लोग प्रायः संसार में उलटे काम ही किया करते हैं। वो अधर्म को धर्म समझते हैं। सब अच्छे कामों को बुरा और बुरे कामों को अच्छा समझते हैं। इसका कोई सम्बन्ध पढ़ने लिखने से नहीं है। जिनकी बुद्धि तामसी है उसके सम्बन्ध में कहा है।

प्रज्ञावानपि पण्डितोऽपि चतुरोऽप्यत्यन्त सूक्ष्मार्थदृक्

व्यालीढस्तमसा नवेत्ति बहुधासम्बोधितोऽपि स्फुटम्

भ्रान्त्यारोपितमेव साधुकलयत्यालम्बते तद्गुणान्

दृष्ट्वासौ प्रबला दुरन्ततमसः प्रकिर्मद्वत्यावृतिः

बुद्धि रखता हो, पण्डित भी हो, चतुर भी हो और हर बात की गहराई में जाने वाला भी हो, किन्तु उसकी वृत्तियाँ तमोगुणी हों तो वह बार बार स्पष्ट समझाने पर और सावधान करने पर भी अपने हित अहित को समझने में बिल्कुल असमर्थ रहता है, बल्कि अपनी भ्रान्त धारणाओं के कारण जिस गलत को भी सही समझ बैठता है उसके ही गुण वर्णन करने लगता है। दोष उसकी समझ में बैठते ही नहीं। इसका कारण केवल प्रबलात्मः शक्ति है, जिसको दूर करना बड़ा कठिन है, क्योंकि यह बुद्धि पर पर्दा डाल देती है। बुद्धि दोषों को दूर करनेके लिये ज्ञानकी आवश्यकता है। 'बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति' शुद्ध बुद्धि की पहिचान ही यह है कि वह सात्विकी हो। भारत की पवित्र भूमि में सन्तों की, महात्माओं की, योगियों की, सदा प्रतिष्ठा रही है। सन्तों का बालकों जैसा सरल स्वभाव होता है, उनका रहन सहन सादा होता है। वो साधारण शिक्षा प्राप्त हों अथवा उन्होंने कतई शिक्षा न पाई हो फिर भी वो बड़े से बड़े शिक्षा शास्त्रियों के भी पूज्य होते हैं। असत्य उनको स्पर्श नहीं करता, ऊँचीच का भेद उनमें होता ही नहीं। किसी भी प्रकार की प्रतिष्ठा और लोभ लालच से वो बहुत दूर होते हैं। सब प्राणियों पर उनका स्नेह बरसता रहता है छल, कपट, दम्भ और अभिमान से वो बहुत दूर रहते हैं। यही बुद्धि की निर्दोषता का और सात्विकी होने का प्रमाण होता है। इसके विपरीत बड़ी-बड़ी शिक्षा प्राप्त किये हुए, साइंटिस्ट जो पदार्थ विद्या को जानने वाले हैं, अपने बुद्धि दोष के कारण ऐसी चीजें बनाते रहते हैं, जिससे संसार नष्ट हो जावे और वो स्वयं भी नष्ट हो जावें। बड़े बड़े भयानक एटम बम, हाइड्रोजन बम, कबोल्ट बम, बड़ी बड़ी विषैली गैसें तथा अन्य मारक शस्त्रास्त्र सब बुद्धिमानों की ही तो कृतियाँ हैं किन्तु सन्त महात्मा संसार को जीवन दान देते हैं और ये साइंटिस्ट संसार के निरपराध प्राणियों के प्राण लेते हैं, यह बुद्धि का ही तो अन्तर है। सात्विकी बुद्धि वाले लोग कभी ऐसे दुष्कर्मों में प्रवृत्त नहीं हो सकते जिससे लोक का अहित हो। बुद्धि से बुद्धि दोष दूर हो जावे

तो शुद्ध और दोष रहित बुद्धि वाले लोग संसार को सुखी बनाकर रख दें ।

“बुद्धि रूपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् ।”

बुद्धि, उपलब्धि और ज्ञान ये समानार्थक शब्द हैं ।

ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः ।

ज्ञान से ही मुक्ति की प्राप्ति है ।

ज्ञान से ही संसार में भी सारा चमत्कार दीख रहा है । जितने अच्छे काम संसार में दीखते हैं वो निर्दोष बुद्धि के हैं, किन्तु सद्दोष बुद्धियाँ भी संसार में काम तो बड़े बड़े करती हैं, किन्तु सभी संसार के अकल्याण के और दुःखदायी होते हैं, अतः बुद्धि की निर्दोषता जरूरी है ।

सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी बुद्धियों के कारण सुख भी सात्त्विक राजस और तामस हो जाता है जिनमें सात्त्विक सुख को ही श्रेष्ठ माना है—

प्रथम सात्त्विक सुख है—

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्

तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धि प्रसादजम्

सात्त्विक सुख को प्राप्त करने के लिये प्रारम्भ में साधनों द्वारा जो प्रयत्न किया जाता है उसमें कष्ट होता है, और वह विष के समान प्रतीत होता है, किन्तु परिणाम में आनन्द देने वाला होता है जो अमृत के समान प्रतीत होने लगता है, क्योंकि वह सुख आत्मा और बुद्धि की प्रसन्नता से पैदा होता है । जैसे क्रीड़ासक्त (खेल-कूद में मस्त) बच्चे प्रारम्भ में पढ़ने से कतराते हैं और बड़ा कष्ट अनुभव करते हैं किन्तु उस कष्ट को यदि प्रारम्भ में वो सह लेते हैं तो विद्वान् होने के बाद अमृत प्राप्ति के समान उन्हें

आनन्द आने लगता है, इसही प्रकार विषयासक्त पुरुष प्रभु का ध्यान, चिन्तन, तप का अनुष्ठान, लोक सेवा आदि में बड़ा कष्ट अनुभव करता है, किन्तु यदि वो विषयासक्ति को छोड़ कर प्रारम्भ में कुछ कष्ट सहले तो उसका परिणाम बड़ा सुन्दर निकलता है इस सुख को ही सात्विक सुख कहा है ।

दूसरा राजस सुख है—

विषयेन्द्रिय संयोगाद्यत्त दग्नेऽमृतोपमम्

परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्

प्रारम्भ में भिन्न-भिन्न विषयों के साथ जब इन्द्रियों का सम्पर्क होता है तो वह सुख अमृत के समान प्रतीत होता है किन्तु परिणाम में वह सुख विष के समान दुःख पहुँचाता है, क्योंकि विषयासक्त पुरुष अनेक प्रकार के रोगों से और कष्टों से आक्रान्त होकर दुनियां में दुःखी देखे जाते हैं यही राजससुख है ।

तीसरा तामस सुख है—

यदग्ने चानुबन्धेच सुखं मोहनमात्मनः

निद्रालस्य प्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्

जो सुख भोग काल में और परिणाम में भी आत्मा को मोहित करने वाला होता है, वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न होता है, उस सुख को तामस कहा गया है, यह बुद्धि के गुण दोषों का वर्णन किया । परिणाम स्वरूप सात्विकी बुद्धि के द्वारा जो सात्विक सुख प्राप्त किया जाता है वही सर्वोत्कृष्ट और निर्दोष सुख है, इसलिये बुद्धि को सात्विक बनाकर उसे निर्दोष बनाना ही बुद्धिमान् व्यक्ति का काम है ।

—:०:—

(७ वाँ दोष) आत्म दोष है

आत्मा के अधीन ही ये सारी शक्तियें शरीर में काम करती हैं। जब आत्मा के अधीन बुद्धि, बुद्धि के अधीन मन, मन के अधीन इन्द्रियें और इन्द्रियों के अधीन शरीर काम करता है तो सभी कार्य निर्दोष होते हैं। इसके विपरीत यदि इन्द्रियें मन के अधीन न रहें मन बुद्धि के अधीन न रहे और बुद्धि आत्मा के अधीन न रहे तो समस्त कार्य बिगड़ जाते हैं। किन्तु यह गम्भीरता से सोचने की बात है कि ये सभी शक्तियें जड़ हैं, इनमें स्वयं कोई कार्य करने की शक्ति नहीं है, केवल जीवात्मा ही चेतन है, जो अपनी प्रेरणा से इन्हें चलाता है। यदि आत्मा ही स्वयं दोष दुष्ट हो तो फिर कोई भी शक्ति पवित्र नहीं रह सकती।

‘संस्कार दोषात् इन्द्रिय दोषाच्चाविद्या’

पूर्व जन्म के कुसंस्कारों के दोष से, और इस जन्म के इन्द्रिय दोषों से, आत्मा में अविद्या आ जाती है, यही आत्म दोष है। इसलिये सबसे मुख्य काम आत्मा को निर्दोष करना ही है। पूर्व जन्म के कुसंस्कार बड़े प्रबल होते हैं, उन संस्कारों से ही मनुष्य का स्वभाव बना होता है। उस स्वभाव की प्रेरणा से ही मनुष्य कार्य किया करता है। स्वभाव को सर्वथा बदला नहीं जा सकता।

‘स्वभावोदुरतिक्रमः’

अतीत्यहि गुणान् सर्वान् स्वभावोमूर्ध्नवर्तते।

सारे गुणों का अतिक्रमण करके स्वभाव अपना चमत्कार दिखा देता है। बड़े बड़े क्रोधियों ने क्रोध को दूर करने के लिये बड़ी बड़ी प्रतिज्ञायें कीं किन्तु वो स्वभाव से पराजित हुए। बड़े बड़े कामियों ने

काम को बश में करने का बड़ा बड़ा प्रयास किया किन्तु समय आने पर स्वभाव (आदत) के कारण उनमें पतन देखा गया। यूँ तो किन्हीं आश्रमों में रहने के कारण अथवा एकान्त वास के कारण या मौन रखने के कारण भले ही मनुष्य यह समझ ले कि मैं निर्दोष हो गया हूँ किन्तु परीक्षा के समय वह खरा उतरे तब बात है। अवसर प्राप्त न होने पर तो सभी श्रेष्ठ हैं। बुढ़ापा आने पर या धातुओं के क्षीण होने पर तो सभी संयमी हैं। स्वयं ही शम उत्पन्न हो जाता है।

“धातुपुद्गीयमाणेषु शमः कस्य न जायते”

किन्तु—

“विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः”

पतन की तर्फ़ ले जाने वाले सभी पूर्ण साधन उपस्थित हों फिर भी अपनी मनोवृत्तियों की दृढ़ता के कारण मनुष्य अविचल बना रहे उसकी मनोवृत्तियाँ उसको गिरने न दें, तभी समझना चाहिये कि वह दोष रहित होकर उत्तम कोटि में पहुँच गया है। यदि मनुष्य यह जानना चाहे कि मैं किस स्थिति में हूँ और उसमें कितनी उत्कृष्टता अथवा निकृष्टता है तो उसको जानने के तीन प्रकार हैं।

(१) स्वप्न—मनुष्य स्वप्नों में अपने चरित्र का चित्र पूरा पूरा देख सकता है। कामी को काम के, क्रोधी को क्रोध के, चोर को चोरी के, लोभी को लोभ के, अवश्य स्वप्न आते हैं। मनुष्य की जो वास्तविक वृत्ति धारा है उसका प्रवाह ही स्वप्न में देखने को मिलता है वही हमारा असली स्वरूप होता है।

(२) एकान्त—यदि आपकी वृत्तियों में से चोरी और बेईमानी बिल्कुल निकल गई है तो इसकी परीक्षा एकान्त प्राप्त होने पर ही हो सकती है। किसी जंगल में जाते हुए सोने के आभूषणों की पोटली देखकर यदि आपकी चित्तवृत्तियों में चांचलता पैदा नहीं होती, और आप उसे नहीं उठाते हैं तो समझना चाहिये कि आपकी

वृत्तियों में से चोरी का भाव निकल चुका है किसी निर्जन वन में अकेली सुन्दरी युवती को देखकर भी आपकी काम वृत्ति जागृत नहीं होती, तो समझना चाहिये आपने काम वासना को जीत लिया है, किन्तु वह बहुत बड़ी साधना का फल है। अच्छे-अच्छे ऋषि, मुनि, तपस्वी, साधु, सन्त भी इसमें गिर जाते हैं।

(३) अवसर—क्रोध मनुष्य को प्रति समय और अनायास नहीं आता। काम मनुष्य को प्रति समय उत्पन्न नहीं होता। इसही प्रकार से अन्य दोष भी प्रति समय उत्पन्न नहीं होते। किसी के भड़काने अथवा अपने विरुद्धाचारण से क्रोध, सिनेमा के नग्न चित्र और अश्लील गाने सुनने पर काम, किसी के विशेष अवसर पर अपनी स्वार्थ पूर्ति के प्रलोभन देने से लोभ, उपस्थित हो जायें तो समझ लेना चाहिये वृत्तियां अभी दूषित हैं। इसलिये सबसे बड़ा मुख्य कार्य यही है कि आत्म दोषों को आदमी सबसे पहिले दूर करने की चेष्टा करे। स्वभाव सिद्ध आत्म दोष समूल नष्ट नहीं हो सकते, किन्तु उनमें आहिस्ता-आहिस्ता सुधार लाने का उपाय यह है कि कम बोलना, एकान्तवास, दोषों को दूर करने के लिये प्रतिदिन प्रभु से प्रार्थना करना, अपनी शक्ति को ऊंचा रखते हुए दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ दोषों को दूर करने की पूर्ण चेष्टा करना। इन उपायों से और इनका कड़ाई से पालन करने से धीरे-धीरे विकृतियों में तब्दीली आकर आत्मा को स्वच्छता प्राप्त होती है, और दोष निवृत्ति होती है। प्रत्येक प्राणी अपने पैदा किये हुए दोषों को मिटाने में सर्वथा स्वतन्त्र है, अतः उन्नति से निराश होना बड़ी भूल है। दोषों का ज्ञान जिस शक्ति से होता है, उसही में दोषों को मिटाने की शक्ति भी मौजूद है। अपने पैदा किये हुए दोषों के मिटते ही निर्दोषता स्वतः आ जाती है निर्दोषता किसी व्यक्ति विशेष की वस्तु नहीं, उस पर सभी प्राणियों का समान रूप से अधिकार है, अर्थात् निर्दोषता के सभी अभिलाषी उसे स्वतन्त्रतापूर्वक प्राप्त कर सकते हैं।

जलं पङ्कवदत्यन्तं पङ्काऽभावे जलं स्फुटम्
यथा भाति तथात्मापि दोषाभावे स्फुटप्रभः ।

जैसे कीचड़ से मिला हुआ जल गदला मालूम होता है और कीचड़ के नीचे बैठ जाने पर अथवा कीचड़ को साफ़ कर देने पर निर्मल प्रतीत होने लगता है उसही प्रकार आत्मा भी जब दोष रहित हो जाता है तब स्पष्टतया उसकी निर्मलता प्रतीत होने लगती है ।

दोष निवृत्ति का लाभ

संसार सृष्टि की आदि से आज तक इस गम्भीर प्रश्न पर विचार करता आ रहा है कि दुःखों का अन्त कैसे हो, और सुखोपलब्धि कैसे की जावे । भारतीय ६ हों दर्शन कारों का प्रतिपाद्य विषय भी एक यही रहा है कि दुःखों की समाप्ति कर मोक्ष प्राप्ति कैसे हो सकती है । भले ही उन्होंने अपने-अपने ढंग से उसका प्रति पादन किया है । यह केवल मानवीय अभिलाषा ही नहीं है, अपितु समस्त चेतन जगत् की चाह है । मनुष्य पशु पक्षी कीट पतङ्ग सभी की यह समान इच्छा और समस्या है ।

जिस प्रकार मनुष्य सुख चाहता है, उसही प्रकार पशु पक्षी आदि भी सुख चाहते हैं । मनुष्य चाहे व्यापार करता हो या नौकरी, या अन्य किसी भी प्रक्रिया द्वारा अर्थों पार्जन करता हो योगी योग करता हो, अथवा तपस्वी तप तपता हो, सांसारिक सैकड़ों क्रियाओं में रत किसी से भी प्रश्न कीजिये तुम यह क्यों करते हो तो सबका उत्तर एक ही होगा सुख प्राप्ति के लिए । क्यों ?

“दुःखादुद्विजते सर्वः सर्वस्य सुख मीशितम्”

दुःख से सब घबड़ाते हैं सुख सबको प्यारा है ।

जैसे मनुष्य गर्मियों में पहाड़ों पर जाकर ठंड प्राप्त करना चाहता

है और जाड़ों में घरों को हीटरों से गर्म करके सुख भोगना चाहता है, वैसे ही समस्त पशु पक्षी भी गर्मी सर्दी से बचा चाहते हैं। कीट पतङ्गों की भी यही दशा है। वो भी ज़मीन के अन्दर बिलों में घुसकर सर्दी गर्मी वर्षा से अपनी रक्षा करते हैं। सुख बाजारों में विकता नहीं जो खरीद लिया जावे। धन से सुखोपलब्धि हो जावे ऐसी भी बात नहीं है। धन यद्यपि सुखोपलब्धि का साधन है किन्तु धनी भी संसार में बड़े दुःखी देखे जाते हैं, और धन से दुःखोपलब्धि भी देखी जाती है। धन के कारण ही धनी प्राण गंवा बैठते हैं। वास्तव में सुख तो आत्मोपलब्धि है। आत्मा की अनुकूल वेदनीयता का नाम सुख और आत्मा प्रतिकूल वेदनीयता का नाम ही दुःख है। अर्थात् आत्मा जिसको अच्छा समझे वह सुख और जिसको बुरा समझे वही दुःख है। फिर सुख दुःख भी सापेक्ष हैं। मैं जिसको दुःख समझता हूँ उसको ही दूसरा सुख समझता है। विषय और लम्पट आदमी जिन विषय भोगों में फँसकर सुखानुभूति करते हैं। संयमी, योगी और तपस्वी उन्हीं में दुःखों की अनुभूति करते हैं। परमात्मा ने प्रकृति के विषयों में आनन्द का थोड़ा सा अंश भर दिया है, जिसे संसार सुख कहता है, इस सुख की प्रतीति शब्द, स्पर्श, रूप रस, गन्ध के द्वारा होती है। इस सुखोपलब्धि के साधन के रूप में परमात्मा ने इन्द्रियों को बनाया, जो विषयों से संयुक्त होकर भिन्न-भिन्न सुखोपलब्धियों को कराती हैं। जब तक आँख किसी रूप को नहीं देखेगी तब तक रूपसुखोपलब्धि होती ही नहीं। जब तक रसना स्वादिष्ट रस का रस नहीं लेती तब तक रससुखोपलब्धि भी नहीं होती। इन साधारण तथा क्षणिक सुखोपलब्धियों में फँसा प्राणी जब प्रचुर मात्रा में इन विषेन्द्रिय जन्य सुखों की प्राप्ति करना चाहता है तब ये सुख दुःख में तब्दील हो जाते हैं, और प्राणधारियों की मृत्यु का कारण भी बन जाते हैं। अनेक प्रकार के रोगों की सृष्टि भी इनके द्वारा होती है। ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लोड़ों व्यक्तियों में से कोई

कोई व्यक्ति इन से घृणा कर शाश्वत आनन्द की तर्फ प्रवृत्त होते हैं। आनन्द चाहे जितना लेते जाइये वह दुःख में तब्दील नहीं होता। सुख और आनन्द में यही भेद है। सुख संसार से मिल जाता है। उसके पास देने को आनन्द नहीं क्योंकि सुख का अर्थ ही यह है कि जो इन्द्रियों को अच्छा लगे। सुख देने वाले विषय भी प्राकृतिक हैं और उन विषयों से सुख प्राप्त करने वाली इन्द्रियां भी प्राकृतिक हैं तो प्रकृति को वही चीज देनी पड़ती है जो उसके पास है। परमात्मा आनन्द स्वरूप है उसका नाम ही सच्चिदानन्द है, वह आनन्द का भण्डार है, उसमें ही आनन्द रस के देने की शक्ति है। यह आनन्द इन्द्रिय प्राप्य नहीं है, उसकी प्राप्ति यानी अनुभूति तो अन्तःकरण के द्वारा ही होती है।

समाधिनिर्धूत मलस्यचेतसो निवेशितस्यात्मानं यत्सुखं भवेत्
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ।

अर्थात् समाधि के द्वारा जब चित्त के समस्त मल दूर हो जाते हैं और निर्दोष चित्त के द्वारा जब आत्मा आनन्दानुभूति करता है उसका वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता, उसका अनुभव केवल अन्तःकरण से हो जाता है। इस प्रकार दोष निवृत्ति का लाभ सुख ही है। दोष निवृत्ति के बिना सुखोपलब्धि की सारी क्रियाएं व्यर्थ हैं। सदोष अन्तःकरण में प्रभु की प्रतीति नहीं हो सकती, दोषों के दूर होने पर प्रभु का साक्षात्कार स्वयं होने लगता है, आनन्द की प्राप्ति स्वयं हो जाती है। दोष काला पर्दा बनकर जीवात्मा और परमात्मा के बीच में खड़े हो जाते हैं उन्हें दूर करने पर ही प्रभु के दर्शन हो सकते हैं। सर्वव्यापक होने से प्रभु सब कालों में और सब देशों में सबको प्राप्त है फिर भी मनुष्य उसकी प्राप्ति के लिये अनेक कष्टों को सह कर बड़ा यत्न करते हैं। तपश्चर्या, व्रतानुष्ठान, यज्ञादिकर्म, योगाभ्यास आदि क्रियाएं उसकी प्राप्ति के लिये ही की जाती हैं किन्तु

प्रभु के दर्शन फिर भी नहीं होते। क्यों ? इसलिये कि दोष निवृत्ति ही प्रभु का दर्शन है। आप लालटैन का प्रकाश लेना चाहते हैं तो लालटैन के ऊपर पड़े अनेक काले पर्दों को हटा दीजिये। जैसे-जैसे पर्दे हटते जावेंगे प्रकाश आपके नज़दीक स्वयं आता जावेगा। यदि प्रकाश आपको करना है तो प्रकाश प्राप्ति की इच्छा को छोड़कर काले पर्दों को हटाने की कोशिश कीजिए इसही का नाम प्रभुदर्शन है प्रकाश और अंधकार के स्वरूप पृथक्-पृथक् हैं। भला क्या यह संभव है कि प्रकाश और अंधकार एक ही जगह उपस्थित रह सकें फिर यह कैसे संभव हो सकता है कि दोषरूप अंधकार के रहते हुए आत्मा में प्रकाश उपस्थित हो जावे। व्यक्ति, जाति, समाज, देश, राष्ट्र और विश्व दोषों के रहते कभी उन्नत नहीं हो सकते। अपवित्र पात्रों में पवित्र वस्तु के रखने से पवित्र वस्तु की पवित्रता ही नष्ट हो जाती है। बिना साफ की हुई हांडी में दूध रखने से फट जाता है। गुण और दोषों की कभी एक जगह स्थिति नहीं रहती।

9349

गुणा गुणज्ञेषु गुणाभवन्ति, ते निगुणं प्राप्यभवन्तिदोषाः

आस्वाद्यतोयाः प्रभवन्ति नद्यः समुद्रमासाद्यभवन्त्यपेयाः ।

गुणों की प्रतिष्ठा रखने वालों में ही गुण अपनी स्थिति में रहते हैं, निर्गुणों को प्राप्त करने के बाद गुण भी दोष हो जाते हैं। नदियां मीठे पानी को लेकर बहती हैं किन्तु समुद्र में मिलने के बाद खारी हो जाती हैं !

दोषोत्पत्ति के विशेष कारण

चार प्रकार के व्यक्तियों में अनायास ही दोष उत्पन्न हो जाते हैं, (१) अति निर्धन । (२) अति धनी । (३) व्यसनी और (४) अज्ञानी । अत्यन्त निर्धन मनुष्य जब अपने खाने पीने और अपने आवास की भी व्यवस्था नहीं कर पाता है तो उसका चिन्तित रहना स्वाभाविक है। चिन्तीशील व्यक्ति का मस्तिष्क विचलित हो जाता है और विकृत

मस्तिष्क से हितचिंतन संभव ही नहीं। किसी निर्धन ग्रामीण व्यक्ति ने अपनी भाषा में अपने विचार प्रकट किए हैं—

चार सुबहकी चार शामकी भेजदेओ गोपाला
इतने में भी कसर रखो तो रखलो कण्ठी माला
रखलो कण्ठीमाला लाला मुखे भजन न होई
भूखे भजन कराना हो तो और ढूँढ लो कोई

भूख से मनुष्य की सभी शक्तियां क्षीण हो जाती हैं। पेट की ज्वाला मनुष्य से पतित से पतित कर्म करा लेती है उस व्यक्ति में सारे ही दोष आ जाते हैं। निर्धनता से परेशान होकर व्यक्ति अपनी स्त्री बच्चों और अपने भी जीवन का श्रान्त कर देता है। हमारे देश में गरीबी दूर करने के थोथे नारे लगाए जा रहे हैं। विगत २५ वर्षों में गरीबी दूर होना तो दूर रहा उल्टी और बढ़ती जा रही है, गरीबी के साथ बेकारी बढ़ना कोढ़ में खाज है। इस सब का पूर्ण उत्तरदायित्व शासन पर है। ऐसे गरीब लोगों में अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न हो जावें तो दोष किसका, उन गरीबों का या गरीबी पैदा करने वालों का।

महात्मा बुद्ध ने एक बार अपने एक शिष्य से कहा कि अमुक स्थान में जाकर लोगों को उपदेश करो। वह शिष्य उपदेश कर आया। महात्मा बुद्ध ने पूछा, लोगों ने ध्यानपूर्वक उपदेश सुना या नहीं? शिष्य बोला, 'महाराज! सबने बड़े प्रेम से सुना किन्तु एक मनुष्य ने मेरे व्याख्यान पर कोई ध्यान ही नहीं दिया। मैंने बहुत कोशिश की किन्तु सब व्यर्थ हुआ। महात्मा बुद्ध बोले, उसे हमारे पास बुलाकर ले आओ। वह आया तो उसके सामने सुन्दर भोजनों का थाल परोस कर कहा गया कि भोजन कीजिए। भोजनोपरांत उससे कहा गया कि अब आप जा सकते हैं। वह चला गया। शिष्य बोला, भोजन तो आपने करा दिया उपदेश तो बुद्ध दिया ही नहीं।

महात्मा बुद्ध बोले, वह भूखा था, उपदेश सुनने के योग्य नहीं था, अब तुम ही उसे उपदेश दो वह सुनेगा। दुबारा शिष्य उपदेश देने गया तो उसने बड़े प्रेम से उपदेश सुना। बुद्ध बोले—उपदेश पेट भरने के बाद ही सुहाता है। अति निर्धन मनुष्य अपना बुद्धि सन्तुलन खो बैठता है और अधीर हुआ निराशा में झूबकर सभी दोषों को अपना लेता है। बहुत से भूखे मनुष्य डाकुओं में, क्रांतियों में, जेवकतारों में, गुण्डों में शामिल हो जाते हैं।

बुभुक्षितः किन्नकरोति पापम्

क्षीणाजना निष्करुणा भवन्ति

भूखा आदमी कौन सा पाप नहीं करता, उसको अपने ऊपर भी दया नहीं रहती। निर्धनता बड़ा भारी अभिशाप है। निर्धनता से सब प्रकार की हीनता मनुष्य में आ जाती है।

दारिद्र्याद्विद्यमेति हीपरिगतः प्रभ्रश्यते तेजसः

निस्तेजाः परिभूयते परिभवान्निर्देदमापद्यते

निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्ध्यापरिभ्रश्यते

निबुद्धिः क्षयमेत्येहोनिधनता सर्वापदामास्पदम् ।

अर्थ—दरिद्री आदमी अपनी हीनावस्था में जब दूसरों के सामने जाता है तो उसे लज्जा अनुभव होती है, लज्जित मनुष्य में कोई तेज नहीं रहता, तेजोहीन मनुष्य अपने में गिरावट महसूस करता है, गिरावट अनुभव करने वाले में अपने आपसे ग्लानि हो जाती है, ग्लानि को प्राप्त हुआ मनुष्य शोक में डूब जाता है, शोक में डूबा मनुष्य बुद्धि खो बैठता है और बुद्धिहीन होने पर मनुष्य नष्ट हो जाता है। इसलिए निर्धनता सारी आपत्तियों की और दोषों की जड़ है। निर्धनता से हीनता और परवशता आती है। निर्धन मनुष्य

दूसरों का दास बनकर जीवन बिताता है वेद कहता है—‘अदीनाः स्याम शरदः शतम्’ हम सौ वर्ष तक दीनता रहित जीवन व्यतीत करें। दीनता का जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा मृत्यु अच्छी है। दीनता धन की ही नहीं सब प्रकार की बुरी है।

अति धनी व्यक्तियों में भी अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। अति धनी व्यक्ति वही हो सकता है, जो अधर्म से तथा कुमार्ग से रुपया कमाता हो तथा किसी पुण्य कार्य में रुपया खर्च न करता हो और सम्पत्ति को बटोर-बटोर कर इकट्ठा करता रहता हो। ऐसे व्यक्तियों में सबसे पहिले तो अभिमान दोष पैदा होता है। अपने धन के घमंड पर वह समस्त कुकर्मों को करने लगता है और धन की शक्ति से ही वह सभी प्रकार के कुकर्मों से पैदा हुई आपत्तियों को जीतने की कोशिश भी करता है। गीता में इसका बड़ा सुन्दर वर्णन है।

(१) आशापाश शतैर्वद्धाः कामक्रोध परायणाः

ईहन्ते कामभोगार्थं मन्यायेनार्थं सञ्चयान्

(२) इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्

इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्

(३) असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि

ईश्वरोऽहमहंभोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी

(४) आहूयोऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया

यच्चे दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञान विमोहिताः

(५) अनेक चित्तविभ्रान्ता मोहजाल समावृताः

प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।

इन श्लोकों का भावार्थ यह है कि जो मनुष्य संसार की बड़ी बड़ी कामनाओं को लेकर अन्याय से सम्पत्तियों का ढेर इकट्ठा करना चाहता है तथा ये ठाठ तो मेरे हो गए, जो और होने हैं उन्हें भी आसानी से प्राप्त कर लूँगा, अमुक अमुक शत्रु को तो मैंने समाप्त कर दिया, वाक्त्रियों को भी समाप्त कर डालूँगा क्योंकि मेरे अन्दर सभी प्रकार की शक्तियाँ मौजूद हैं। लोगों का मुँह बन्द करने के लिए यज्ञ कराऊँगा, दान दूँगा इस प्रकार चैन की वंशी बजेगी। इस प्रकार जो लोग सांसारिक कामनाओं और भोगों में आसक्त होकर अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले अज्ञानी जन मोह रूप जाल में फँसे हुए होते हैं वो महान् अपवित्र नरक में गिरते हैं।

धन के घमण्ड को दूर करने और अभिमान को चकानाचूर करने के लिए दान और निःस्वार्थ सेवा को ही परम साधन बताया है। दान देने से धन की मात्रा संतुलित रहती है और निःस्वार्थ सेवा से घमण्ड नष्ट हो जाता है।

जो धनी अपने धन मद के कारण दान और सेवा भाव को छोड़ कर अपना व्यसनी जीवन बिताते हैं वो अपना हित सोच ही नहीं सकते।

तीसरे व्यसनी व्यक्ति—भी अपना हित सोचने में सर्वथा अशक्त रहते हैं। व्यसनी व्यसनों के चक्र में घूमते हैं, जैसे भँवर के बीच में अकार कोई वस्तु घूमती है। उस चक्कर से निकलना बड़ा कठिन काम है। व्यसन मनुष्य को अपने में बाँध लेते हैं। संसार में मनुष्य प्रायः व्यसनों में फँसे हुए हैं। व्यसन सैकड़ों प्रकार के हैं। किन्हीं को कुछ कम व्यसन लगते हैं किन्तु प्रायः करके लोगों में तो अनेक व्यसन होते हैं। बहुत सों का तो जीवन ही व्यसनमय हो जाता है और वो नष्ट हो जाते हैं। अनेक प्रकार के नशे जैसे बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, माँग, गाँजा, चरस, चण्डू, मदक, शराब, कोकीन, चाय, काफी आदि हलके भारी-सभी व्यसन होते हैं। इन व्यसनों में डूब जाते हैं और अपनी

आदत से लाचार होकर किसी को भी नहीं छोड़ सकता। इस ही प्रकार सिनेमा देखने का शौक, जुआ खेलने का शौक, गन्दी गन्दी तस्वीरें देखने और गन्दे गन्दे गाने सुनने का शौक, सट्टेबाजी का शौक, चौपड़, शतरंज और ताश के जुए का शौक, वेश्यागमन, परस्त्री गमन तथा अप्राकृतिक व्यभिचार का व्यसन आदि ऐसे भयंकर व्यसन हैं जिनमें फँसा व्यक्ति व्यसनों में ही नहीं व्यसनियों के भी फन्दे में फँस जाता है। बहुत से व्यसनी समझते हैं कि यह बुरा काम है और इसका परिणाम बुरा हो सकता है फिर भी आदत की लाचारी से उन कुमार्गों को छोड़कर अच्छे मार्गों का अनुसरण नहीं कर सकते।

अजानन्माहात्म्यं पततुशलभो दीपदहने
समीनोप्यज्ञानात् वडिशयुतमश्नातु पिशितम्
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्
न मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा।

पतंगे अग्नि के प्रताप को नहीं जानते कि हम उसके स्पर्श से मर जायेंगे। इसलिए करोड़ों पतंगे वर्षा ऋतु में दीपक और बिजली की बत्ती की अग्नि से अपने प्राण गँवा बैठते हैं।

मछली भी नहीं जानती कि बाँस के डोर के काँटे के साथ लगे मांस के टुकड़ों को मुख में लेने से काँटा मेरे प्राणों को समाप्त कर देगा, किन्तु मनुष्य तो हानि लाभ की सभी बातों को जानता है वो यह भी जानता है कि व्यसनों की कामनाएँ विपत्तियों के जाल से जटिल हैं फिर भी हम उनको छोड़ने में सर्वथा असमर्थ रहते हैं। इससे यही समझा जा सकता है कि इस मोह की महिमा बड़ी ज़बर्दस्त है। ऐसी स्थिति के कारण व्यसनी भी अपना हितचिन्तन नहीं कर सकता। अपना हित सोचा होता तो विषैली शराब को पीकर हजारों व्यक्ति अपने प्राण न गँवाते, अपना हित सोचने वाले वेश्यागमन गन्दी जल्दी से गन्दी बीमारी आनुषाक और तत्त्वक

से अपने स्वास्थ्य और शरीरों को नष्ट नहीं करते। पशु तथा पक्षियों में परमात्माने विवेक शक्ति नहीं दी, इसलिए किसी दशा में वो क्षम्य हैं किन्तु जब शिक्षा और विवेक को प्राप्त करने के बाद भी मनुष्य अविचारशील और व्यसनी बना रहता है तो ऐसे मनुष्यों को अपने को मनुष्य कहने का अधिकार ही नहीं—“मननान्मनुष्यः” जो मननशील नहीं वह मनुष्य भी नहीं। समस्त दोषों से रहित व्यक्ति सन्त कोटि में पहुँच जाते हैं और उनके द्वारा ही संसार को जीवन मिलता है। आज संसार के व्यक्तियों में दोष ही दोष भर गए हैं। धार्मिक समाज भी दूषित हो गए हैं, राजनीति भी अब राजनीति न रहकर प्रजानीति बन गई है। राजनीति को भगवान् मनु ने राज धर्म कहा है, किन्तु इस समय की प्रजानीति को छलनीति कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। आधुनिक समय में राजाओं के अभाव में भी जिसे राजनीति कहा जाता है, उसमें छल, कपट, झूठ, बेईमानी, वायदे खिलाफी सभी शामिल हो गई है। इससे ही सारे वायुमण्डल में दोष भर गए हैं। उन दोषों के कारण ही दुःख व्याप्त हो गए हैं। सन्त दृष्टि के निर्दोष व्यक्ति जब तक संसार में पैदा न होंगे तब तक संसार कष्टों से मुक्त नहीं होगा।

आग लगी आकाश में जर जर परे अंगार

सन्त न होवें जगत् में तो जल जाये संसार

इस समय संसार की एक ही अभिलाषा है कि जैसे भी हो पाप से, पुण्य से, ब्लैक मार्केट से, चोरी से, बेईमानी से, मिलावट से, धोखा देकर, झूठ बोलकर, जैसे भी हो संपया इतना बटोरकर रखो जो २० पीढ़ी तक चलता रहे। करोड़ों रुपये बड़े बड़े व्यक्तियों ने देश विदेशों में बैंकोंमें जमा किये हुए हैं। इसका क्या परिणाम होगा, इसकी किसी को चिन्ता ही नहीं। यदि मनुष्य दूर दृष्टि हों तो आगे की सोचें किन्तु मनुष्य जीवन इतना सिकुड़ गया है कि वह केवल अपने स्वार्थ के लिए ही सोचता है। दोषों के कारण देश की स्थिति ही

क्या सारे संसार की स्थिति ही बिगड़ गई है। समस्त देशों के शासन की बागडोर ऐसे लोगों के हाथों में पहुँच गई है, जो दोषों से भरपूर हैं। कोई किसी की अच्छी बातों को नहीं सुनता। सैकड़ों पार्टियाँ संसार में खड़ी हो गई हैं। पार्टियाँ तब खड़ी होती हैं, जब विचारों में भेद होते हैं। जब संसार इतने विचार भेदों में फँस गया है तो संसार का कल्याण कैसा। इतने भेद अनेक दोषों के कारण ही हैं। गहराई से सोचा जावे तो दोषों का फैलाव बड़ों से ही होता है। बड़े लोग देश के मस्तिष्क स्वरूप होते हैं। जैसे मस्तिष्क के बिगड़ जाने से मनुष्य पागल हो जाता है और उसकी कोई शक्तियाँ काम नहीं करतीं इस ही प्रकार अधार्मिक, आचार विचार से गिरे हुए, स्वार्थी और व्यसनी लोग जब गद्दिदयाँ सम्भालकर बैठ जाते हैं तो देश को अधोगति से कोई नहीं बचा सकता। इस ही लिये वेद में कहा हमें “देवों के पापों से बचाओ।”

प्रातःकाल का समय था, पैरों में चप्पल डाल कर मैं घूमने निकला, सड़क के किनारे की पटरी थी, सोचा चप्पल उतार कर थोड़ी देर नंगे पाँव घूम लूँ, चप्पल उतार दीं, घूम कर देखा तो चप्पल गायब थीं, किन्तु कोई व्यक्ति नज़र नहीं आया, रद्दी कागजों के टुकड़े बटोरने वाला एक आदमी ज़रूर आया था सोचा, उसने ही चप्पलों को रद्दी की बोरी में डाल लिया होगा, बहुत तलाश करने पर भी उसका कहीं पता न चला। दूसरे दिन प्रातः फिर वही व्यक्ति कागज़ चुगता फिर रहा था, हमने कहा माई कल हमारी चप्पल ही किसी ने यहाँ से चुरा ली थी। वह बोला महाराज ! आप चप्पल की बात करते हैं, लाखों और करोड़ों की चोरी करने वाले बड़े लोगों की तरफ तो देखिये, संसार में क्या हो रहा है। उसकी बात सुन कर मैं दंग रह गया, जब ऐसे साधारण व्यक्ति के भी बड़े व्यक्तियों के प्रति ऐसे विचार हैं तो सुधार कैसा। स्वामी विवेकानन्द जी कहा करते थे, दुनियाँ कुत्ते की पूँछ है, १२ वर्ष तक कुत्ते की पूँछ को नलकी में डाल कर रख दो फिर निकालोगे तो देही की देही ही निकलेगी संसार में अब कोई

(५१)

महापुरुष आकर सुधार करता है तो संसार सुधरा सा नजर आता है किन्तु थोड़े समय के बाद फिर उसकी वही दशा हो जाती है। वास्तव में मूल नाश होने पर ही बुराइयों का नाश हो सकता है, सारी बुराइयों के मूल दोष ही हैं। पहिले मनुष्य को अपनी सेवा करनी चाहिए जो अपनी सेवा नहीं कर सकता वह दूसरों की भी नहीं कर सकता। सबसे बड़ी अपनी सेवा यही है कि वह अपने दोषों का निवारण करे। जो दोषोन्मुक्त हो चुका है वही दूसरों को भी दोषोन्मुक्त कर सकता है।

दोषों की मानसिक परिष्कृति जरूरी है। मनसे काल्पनिक नहीं। यानी दोष तो मन की पवित्रता को बनाकर ही दूर किए जा सकते हैं। मन से भूँठी कल्पना आप यह करले कि मैं दोष रहित हो गया हूँ, इससे कुछ नहीं बन सकता। इसके परीक्षण की भूमि जंगल नहीं व्यावहारिक जगत है। जंगल में और आश्रमों में रहने वाले व्यक्ति जिन्हें लोग वीतराग कहते हैं, ऐसे योगी, वानप्रस्थी, संन्यासियों को भी हमने दोष लिप्त पाया है। अपने को पहिचान ने की कसौटी मनुष्य स्वयं नहीं है। दूसरे से अपने को पहिचनवावे। अपने दोष किसी को मालूम नहीं होते।

सदोष व्यक्ति अपने दोषों को नहीं जान पाता, यही उसका सब से बड़ा दोष है। अपने दोषों को जानने पर तो दोषों का परिहार सरल हो जाता है किन्तु जिनकी तमोगुणी वृत्तियाँ हैं वो उन तमोगुणी वृत्तियों के कारण ही दोषों से छुटकारा नहीं पा सकते। तमोगुणी वृत्तियों का वर्णन इस प्रकार है—

अतस्मिंस्तद्बुद्धिः प्रभवति विमूढस्य तमसा

विवेकाभावाद् स्फुरति भुजगे रज्जु धिषणा ।

ततोऽनर्थत्रातो निपतति समादातुरधिकः

अतो योऽसद्बुद्धिः स हि विमूढः । अतो योऽसद्बुद्धिः स हि विमूढः । Haridwar

तमोगुण के कारण मूढ़ पुरुष गलत को सही समझने लगता है, जैसे अविवेकी को साँप रस्सी के रूप में नज़र आता है। जब मनुष्य को तमोगुण से पैदा हुआ अविवेक घेर लेता है तो सत्य को छोड़ कर मनुष्य असत्य का ग्रहण करता है, और मनुष्य के बन्धन का कारण होता है। दोषयुक्त मनुष्य गलती पर गलती करता रहता है। उस समय उसको लोग शैतान कहने लगते हैं।

जो ग़लती कर नहीं सकता उसे भगवान् कहते हैं।

जो ग़लती कर सुधरता है उसे इन्सान कहते हैं ॥

समझता जो न ग़लती को उसे हैवान कहते हैं।

जो ग़लती पर करे ग़लती उसे शैतान कहते हैं ॥

जब दोषों का व्यापक प्रभाव संसार पर पड़ जाता है तो उन दोषों के कारण एक से दूसरे को कष्ट पहुँचने लगता है। दोषों से घिरा हुआ प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि मैं तो सबके साथ बुरे से बुरा व्यवहार करता रहूँ किन्तु मेरे साथ कोई बुरा व्यवहार न करे। यह अपवित्रता का भाव है।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वाचाप्यवधार्यताम्

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्

इस श्लोक में धर्म का निचोड़ यही बताया कि जिसे तुम अपने लिये अनुचित समझते हो, उसे दूसरे के लिए भी अनुचित समझो।

यदि तुम यह समझते हो कि तुम्हें कोई गाली न दे, तुम्हारे साथ कोई दुर्व्यवहार न करे, तो तुम भी किसी को गाली न दो और किसी के साथ दुर्व्यवहार मत करो, किन्तु संसार में इसके विपरीत ही देखने को मिलता है।

कथा—एक आदमी गाँव से एक हंडिया में घी भर कर चला, उसने नीचे शुद्ध घी रखा, ऊपर से भी शुद्ध घी रख दिया, किन्तु बीच में शकरकन्दी भर दी।

एक सुनार के पास जाकर कहा कि यह गाँव का घी ले लो और एक सोने की अंगूठी दे दो। सुनार ने घी को सूँघ साँघ कर देखा तो अच्छा मालूम हुआ। उसने एक अंगूठी दे दी। ग्रामीण बड़ी प्रसन्नता से ले गया। गाँव में जाकर अंगूठी दिखाई तो लोग कहने लगे इसमें तो मिलावट है। बोला देखो दुनियाँ कैसी बेईमान हो गई है, उसे गालियाँ देने लगा। उधर सुनार ने भी जब घी को उलटा तो अन्दर शकरकन्दी निकली, कहने लगा दुनियाँ कैसी बेईमान हो गई है, वह उसे गालियाँ देने लगा। इस ही प्रकार सारे संसार में बेईमानी छा गई है। जब स्वयं मनुष्य बेईमानी करता है तो खुश होता है किन्तु जब उसके साथ दूसरा बेईमानी करता है तो दुःखी होता है। इस प्रकार पारम्परिक व्यवहार से ही सब दुःखी हो रहे हैं।

रेल में एक सज्जन सफ़र कर रहे थे, उनके पास कुछ नकली सिक्के इकठ्ठे हो गये थे, उन्हें वो चलाने की फ़िक्र में थे। गाड़ी ने सीटी दी तो उन्होंने एक अखबार बेचने वाले को आवाज़ देकर कहा—अखबार लाओ! अखबार लेकर उन्होंने खोटे सिक्के उसको थमा दिए। दोनों बड़े प्रसन्न थे। अखबार वाले ने देखा सारे सिक्के खोटे हैं और यात्रा करने वाले व्यक्ति ने देखा अखबार एक साल पुराना है दोनों ही दुःखी होने लगे। विद्वान् लोग कहते हैं, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार विभूतियों की प्राप्ति के लिए जीवन है। इन में सबसे प्रथम धर्म शब्द को रखा है, अर्थात् धर्म पूर्वक हमें अर्थ प्राप्ति करनी चाहिये, और धर्मानुसारिणी ही हमारी कामनाएँ भी होनी चाहिये, तभी हम मोक्ष की तर्फ़ जाने के अधिकारी हो सकते हैं। धर्म के असली स्वरूप को न समझ कर हमने मज़हबों को ही धर्म समझ लिया है मज़हब सम्प्रदाय, मत, पन्थ, मार्ग मनुष्य के मष्तिस्क की उपज हैं और धर्म, ईश्वरीय आज्ञाओं का पालन है। धर्म संसार में एक ही हो सकता है उसके अनेक रूप हो ही नहीं सकते, किन्तु हम अपने-अपने मज़हबों की खींचातान में लगे रहते हैं, और अपने-अपने मज़हब को सब अच्छा बताते हैं, यही भगड़े

की जड़ है। भगड़े कराता है अधर्म और कोसते हैं हम धर्म को, यह बुद्धि के विपरीत विचित्र सी बात है। हम सर्वधर्म सम्मेलन करते हैं, स्टेज पर खड़े होकर हम सभी धर्मों को अच्छा कहने लगते हैं। मैं पूछता हूँ जब सभी धर्म अच्छे हैं तो अनेकता कैसी, सब एक हो जाओ और एक ही धर्म को स्वीकार करो।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः

जिससे लोक कल्याण हो और जिससे मोक्ष प्राप्त हो वही धर्म है, किन्तु आज बड़े बड़े लीडर धर्म के पीछे पड़े हुए हैं, कहते हैं यह धर्म ही सारे भगड़ों की जड़ है। इसको ही समाप्त किया जावे। जनता ने इस वास्ते धर्म को ही तिलाञ्जलि देनी प्रारम्भ कर दी है, इस वास्ते सारा संसार ही धर्म विमुख होता जा रहा है। इन लीडरों को धर्म शब्द का अर्थ समझना चाहिए और उसका स्वरूप भी जानना चाहिए। धर्म विमुख होने से ही संसार में अशान्ति फैल गई है। ऐसी अधार्मिकता बनी रही तो संसार ही नष्ट हो जावेगा। इस समय तो कुछ ऐसी स्थिति है कि—

सर्वधर्मान्परित्यज्यार्थमेव शरणं व्रज

सारे धर्मों को छोड़ कर अर्थ धर्म की ही शरण में चले जाओ। 'प्रभु पैसा राम रुपैया' इस ही की रट संसार लगा रहा है। हमारे देश में सभी वस्तुओं को अत्यन्त सस्ता करने की नीति अपनाई जाती तो इस प्रकार की बेचैनी और अधार्मिकता न फैलती। चोरी, डांके और क्रल भी न होते। किन्तु हम तो पाश्चात्य देशों का अनुकरण करते चले जा रहे हैं। जो स्वयं डूब रहे हैं उनका ही पल्ला हमने पकड़ लिया है, उनके साथ हम भी डूवेंगे। कुछ गाँठ की अकल खर्च करनी चाहिए थी। अपनी स्थितियों के अनुरूप हमको सोचना चाहिए था, अपनी सभ्यता, संस्कृति को छोड़ कर हम खड़े होकर पेशाब करते हैं, कागजों से टट्टी पोंछते हैं, प्लेटों को हाथ में लेकर खड़े होकर और और घूम-घूम कर खाते हैं, विवेक भ्रष्टता के ये सबसे बड़े प्रमाण

हैं। बुद्धि दोष यदि हम में न होता तो हम ऐसे कुकृत्य करने पर आमादा न होते, विवाहों के अवसरों पर केवल अनेक प्रकार के डेकोरेशनों पर ही हम दस-दस हजार रुपये खर्च कर डालते हैं, इतने रुपये से तो दो कन्याओं के विवाह आनन्द पूर्वक हो सकते हैं, जिससे पुण्य भी हमें प्राप्त हो सकता है, किन्तु जैसे अधार्मिक ढङ्ग से हम रुपया कमाते हैं, उस ही प्रकार अधार्मिक ढङ्ग से उसे नष्ट भी कर डालते हैं। यह दुगना पाप हो जाता है। जब तक सादा जीवन व्यतीत करने के भाव हमारे अन्दर पैदा न होंगे, तब तक हमारे आडम्बर और फिजूल खर्चियाँ बन्द न होंगी और अपना, अपने समाज का तथा देश का हम अहित ही करते रहेंगे।

महर्षि पतञ्जलि ने—अष्टांग योग का प्रतिपादन करते हुए सब से पहिले दोष निवृत्ति को ही प्राथमिकता दी। यम और नियम दोष निवृत्ति के लिए ही बनाए गए हैं बल्कि नियमों से पहिले यमों का उल्लेख किया—

“अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः ।”

इस सूत्र में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह का उल्लेख किया है। ये पाँचों दोष इतने बड़े हैं जिनका सम्बन्ध अपने तथा समाज से समान रूप से है, अर्थात् हिंसा का भाव अपने में से भी निकालना चाहिये और समाज में से भी। यदि मैं अहिंसक बन जाऊँ और समाज हिंसक बना रहे तो इससे कभी शान्ति नहीं रह सकती। मैं सत्य बोलता रहूँ, किन्तु समाज असत्य को ही अपनाये रहे तो भी शान्ति का रहना असम्भव है। मैं सत्यवादी बना रहूँ किन्तु सारा संसार झूठ बोलता रहे तब भी लोक व्यवहार ठीक नहीं चल सकता। इसही प्रकार मैं ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता रहूँ किन्तु सारा संसार व्यभिचारी बना रहे और मैं सम्पत्ति को इकट्ठी करके न रखूँ, किन्तु शेष सारा जन समुदाय सम्पत्ति को इकट्ठा करके रखता रहे तो कभी मानव कल्याण नहीं हो सकता इसलिए महर्षि ने बताया कि ये सार्वभौम महाव्रत हैं।

जाति देश काल समयाऽनवच्छिन्नाः

सार्वभौमा महाव्रतम् ।

अर्थात् किसी जाति, किसी देश, किसी काल और किसी विधि के द्वारा भी इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि कोई कहे कि किसी खास अवसर पर किसी जाति के द्वारा किसी देश में किसी यज्ञ विधि से किसी पशु की हिंसा कर दी जावे और उसको उचित माना जावे यह सर्वथा अमान्य है। अन्य चारों यमों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही समझना चाहिये। पाँचों यमों का पालन तो समस्त भू-मण्डल के लिए उचित है, इसके बाद नियमों का नम्बर आता है जिनका सम्बन्ध केवल व्यक्ति से है।

शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।

शुद्ध रहना, सन्तोष रखना, तप करना, स्वाध्याय करना, प्रभु को आत्म समर्पण करना—ये पाँचों काम अपने से सम्बन्ध रखते हैं। यदि कोई व्यक्ति इन कामों को नहीं करता तो उस व्यक्ति की ही हानि है, इससे समाज का कुंज नहीं बिगड़ता सुधरता, किन्तु यमों के अन्दर प्रतिपादित बातों की यदि समाज न अपनावे तो संसार का व्यवहार ही नहीं चल सकता। कल्पना कीजिये यदि सब हिंसा वृत्ति धारण करके आपस में मारकाट करने लग जावे, सब झूठ बोलने लगे और सभी चोरी करने लगे, सब व्यभिचारी बन जावे और सारे ही ब्लैक मार्केट करने वाले तथा घन को जोड़ कर रखने वाले बन जावे, तो क्या संसार का व्यवहार चल सकेगा ? इसवास्ते ऋषि ने बतलाया कि ये दोष तो सारे समाज में से ही निकल चाहिये, तभी कल्याण हो सकता है।

महर्षि गौतम ने भी—न्याय दर्शन में दोषों की उत्पत्ति अज्ञान से मानी है। साधारणतया तो अज्ञान ही सबका मूल है।

दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्याज्ञानाना

मुक्तरोत्तरापायेतदनन्तरा पायादपवर्गः

अज्ञान से सबसे प्रथम दोष ही उत्पन्न होते हैं। दोषों के कारण ही संसार में प्रवृत्ति होती है, प्रवृत्ति के होने पर ही कर्म किये जाते हैं, कर्मों के कारण ही भिन्न भिन्न योनियों में जन्म होता है और जन्म होने के कारण ही मनुष्य दुःखों से घिर जाता है।

द्रष्टृ दृश्ययोः संयोगोऽहेतुः

अर्थात् जीवात्मा और संसार का जब मेल होता है वह मेल ही दुःख का कारण है। न सांसारिक बन्धन में जीवात्मा आवे और न उसे कष्ट हों। इसलिए अज्ञान से पैदा हुए दोषों को दूर करने से ही संसार दुःख मुक्त हो सकता है।

धन की विशेष लालसा—साधारणतया तो धन जीवन के लिए परम उपयोगी है। संसार के सारे काम धन से ही चलते हैं, वीतराग संन्यासियों और तपस्वियों का भी गुज़ारा इसके बिना नहीं चलता, क्योंकि भोजन, वस्त्र और आवास की आवश्यकता तो उनको भी होती है और साधारण स्थिति के ये काम भी तो बिना धन के नहीं होते, किन्तु जब धन प्राप्ति की मनुष्य में ऐसी लालसा पैदा हो जावे जिसकी पूर्ति ही न हो सके तो मनुष्य बड़े मारी कष्ट में पड़ जाता है। ऐसे मनुष्य का स्वास्थ्य, चित्त की शान्ति और धैर्य सभी नष्ट हो जाते हैं। संसार में देखते हैं तृष्णा कभी किसी की पूर्ण नहीं हुई। तृष्णा वाले मर गए मगर तृष्णा न मरी। यक्ष की कथा से उपदेश लीजिये।

यक्ष की कथा—एक राजा का नाई एक दिन मार्ग से गुज़र रहा था। रास्ते में एक वृक्ष पर यक्ष का निवास था, उसने आवाज़ देकर कहा ऐ जाने वाले व्यक्ति ! क्या तुम्हें सात घड़े अशर्कियों से भरे चाहिए ? नाई ने इधर उधर देखा किन्तु कोई नज़र न आया। फिर आवाज़ आई क्या तुम्हें सात घड़े अशर्कियों से भरे चाहिये ? नाई लोभ के वशीभूत होकर कहने लगा हां चाहिए। यक्ष ने कहा जाओ तुम्हारे घर पहुँच गए। कौतूहल वश नाई जल्दी जल्दी

क्रदम बढ़ाकर घर पहुँचा तो देखा, घर में सात घड़े अशर्कियों से भरे रखे थे किन्तु उनमें एक कुछ खाली था। नाई ने सोचा इसको भी अशर्कियों से भर डालूँ तभी आनन्द होगा। उसने अपनी स्त्री के, अपनी पुत्र बधू के, अपनी पुत्रियों के समस्त जेवरों को बेच कर अशर्कियाँ खरीद लीं और उस घड़े में डाल दीं किन्तु घड़ा न भरा। नाई ने राजा से जाकर कहा महाराज ! मेरा इस वेतन में गुज़ारा नहीं होता इसलिये इस वेतन का दुगुना कर दीजिए। राजा नाई के कार्य से परम प्रसन्न था इसलिये उसने इसका वेतन बढ़ा दिया। वेतन वृद्धि से प्राप्त धन की भी अशर्कियाँ खरीद कर नाई घड़े में डालता रहा फिर भी घड़ा न भरा। दुःखी होकर नाई ने निश्चय किया कि घर का खर्च घटाओ, इससे घर वालों को खाने पीने की तो असुविधा हो गई किन्तु कुछ धन की बचत हो गई। उस धन से भी अशर्कियाँ खरीद कर घड़े में डालीं फिर भी घड़ा न भरा। फिर उसने यह निश्चय किया कि घर के सभी लोग मित्रा माँग कर धन एकत्रित करें और उससे अशर्कियाँ खरीद कर घड़े में डालें किन्तु घड़ा फिर भी न भरा तो नाई का चेहरा पीला पड़ने लगा। एक दिन राजा ने उससे कहा क्यों भाई जब हम तुम्हें आधा वेतन देते थे तब तो तुम प्रसन्न नज़र आया करते थे, किन्तु अब पीले नज़र आते हो। नाई लज्जावश चुप रहा। राजा ने कहा कहीं तुम यज्ञ के सात अशर्कियों से भरे घड़ों के चक्कर में तो नहीं पड़ गए। नाई को बड़ा आश्चर्य हुआ कि राजा को यह भेद कैसे मालूम हुआ। बोला, महाराज ! आपको कैसे आभास हुआ ? राजा ने कहा तुम्हारी गति विधियों और चेहरे को देख कर मैंने यह समझ लिया। मैं भी एक दिन उधर से गुज़र रहा था तो यज्ञ ने मुझ से भी यही कहा था, किन्तु मैंने कहा यदि इन अशर्कियों को मैं उपभोग में ला सकूँ तो लेने को तैयार हूँ, किन्तु यज्ञ ने कोई उत्तर नहीं दिया, इसलिए मैंने घड़े नहीं लिए। इसलिए तुम घड़ों को अभी वापस कर दो। यह धन केवल रक्षा के लिए है, उपभोग के

लिए नहीं। नाईने वृक्ष के नीचे जाकर यक्ष से कहा, अपने सातों घड़ों को वापस ले लो। यक्ष ने कहा अच्छा ! घर जाकर नाई ने देखा वहाँ कोई घड़ा न था। घड़े भी गए और घड़ों के साथ घर का सारा सोना भी चला गया। इस ही प्रकार संसार में प्राणी राग प्रेरित कामनाओं की पूर्ति करने में लगा, रहता है किन्तु कामनाओं का घड़ा पूर्ण कभी नहीं होता। लोभ के वशीभूत हुए व्यक्ति न दान दे पाते हैं न अच्छा खा पहिन पाते हैं। जो धन इकट्ठा किया होता है उसको कुछ व्यसनों में और कुछ व्यसनों से पैदा हुए रोगों के निवारण में खर्च कर डालते हैं। अन्त में लाखों करोड़ों की सम्पत्ति को दुनियां में ही छोड़ कर रोते हुए चले जाते हैं।

यदि कोई मनुष्य काँटों से भरे जंगल को पार करना चाहे तो उसके दो तरीके हैं या तो सारे जंगल में इतना मोटा चाम बिछाया जावे जिसमें कांटे न छिदें। या फिर इतने मोटे चाम का जूता पहिना जावे जिसमें कांटे न छिदें। पहिला काम तो असम्भव सा है इसलिये दूसरा ही ठीक है। इस ही प्रकार संसार की समस्त कामनाओं को पूर्ण नहीं किया जा सकता। अतः कामनाओं को कम से कम कर डालना ही श्रेयस्कर है। सुख और शान्ति प्राप्त करने का सबसे अच्छा और सरल उपाय यही है। जो लोग दोषों को दूर कर अपने में सुधार नहीं करते, प्रभु की भक्ति का अंकुर जिनमें पैदा नहीं होता और दुनियां के खटरागों में ही जीवन नष्ट करते हैं उनके सम्बन्ध में कहा जा सकता है। “आए थे हरिमजन को ओटन लगे कपास” अब प्रभु से यही प्रार्थना है—

बुरीं वृत्तियों में न हम फँसने पावें

प्रभो मन में कर दो हमारे उजाला

मनुष्य केवल रोटी खाने वाला और पानी पीने वाला जानवर नहीं है उसको मुक्ति तक का मार्ग तय करना है। उसके लिये जिन साधनों की और उपायों की आवश्यकता है वो जुटाने हैं। इस समय के व्यक्तियों को अपने लक्ष्य का कोई ध्यान ही नहीं है सारा संसार बिना लक्ष्य के दौड़ा चला जा रहा है। आप किसी से पूछिये आप

के जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है ? वह उत्तर देगा खाना पीना और संसार के विषय भोगों को भोगना । इन कामों को तो पशु पक्षी भी करते हैं फिर मनुष्यों में और पशुओं में अन्तर ही क्या रहा । परमात्माने मनुष्य को बुद्धि दी है, जिससे वह अपने भले बुरे को पहिचान सकता है । कामों को करने से पहिले उसके परिणामों पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर सकता है, किन्तु सांसारिक बन्धनों और विषयों में फँस कर वह अपने जीवन को कष्टमय बना देता है और अपने को बरबाद कर लेता है । विषय सुख दुनियाँ का सबसे घटिया सुख है । क्योंकि यह संसार के समस्त प्राणियों को प्रभु ने दिया हुआ है । तामसी बुद्धि वाले लोग इस सुख के आगे और किसी सुख को समझते ही नहीं ।

हमने यथा स्थान शरीर, प्राण, वाणी, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और आत्मा के दोषों का प्रतिपादन किया, उन दोषों को दूर करने के उपाय भी बताए, साधारणतया बुद्धि से मलिनता (मल दोष) मन से चंचलता (विक्षेप दोष) और आत्मा से अज्ञानता (आवरण दोष) मिट जाने से अन्य दोषों की समाप्ति सरलता से हो जाती है । जिस खान पान की तरफ प्रायः व्यक्ति कोई ध्यान नहीं देते उनका इन चित्त वृत्तियों को दूषित करने में बड़ा हाथ है ।

शासन की तरफ से भी मांस तथा मदिरा का बड़ा प्रचार किया गया है जिससे भारत वासियों के मन तथा बुद्धि में बड़े दोष आ गए हैं यदि शासन ने इन दोनों चीजों पर प्रतिबन्ध न लगाया तो वह भारतीय प्रजा को कभी सन्मार्ग पर नहीं ला सकते तथा इन्हीं दोषों के कारण प्रजा से कभी हिंसक वृत्तियाँ और बुरे काम करने की प्रवृत्तियाँ हट नहीं सकतीं, लोगों के स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रह सकते, उन्हें औषधों के सहारे ही कुछ समय तक दुःख उठाते हुए जीवित रहना पड़ेगा । लोगों की आयु भी स्वास्थ्य के साथ लम्बी नहीं होगी । हृदयरोग, रक्तचाप (ब्लडप्रेसर), कैंसर, तथा मूत्ररोग बहुतायत से होंगे । मैंने नौजवानों को सड़क पर चलते चलते चक्कर खा

कर गिरते देखा है। यह स्थितियाँ फिर साधारण हो जावेंगी। शासन लोगों को नियन्त्रण में नहीं रख पावेगा और देश में भयानक क्रांति पैदा हो जायेगी। इस देश में शासन को सचेत होने की आवश्यकता है। जिस प्रकार दोष लिप्त माता पिता अपनी सन्तान को दोष लिप्त नहीं देखना चाहते उसी प्रकार यदि शासकों में कोई दोष हैं तो उन्हें प्रजा के अन्दर नहीं आने देना चाहिये इसी में शासक और शासितों का कल्याण है।

जिसने दोषों की निवृत्ति के साथ साथ जीवन के लक्ष्य को भली प्रकार समझ कर उस पर आचरण करना प्रारम्भ कर दिया वह जीवन मुक्त की भांति आनन्द प्राप्त करने लगता है। एकाङ्गी दोष निवृत्ति से काम नहीं बन सकता। कल्पना कीजिए किसी ने चोरी करना तो छोड़ दिया किन्तु वह कामी बना रहा तो यही दोष उसको अशान्त और नष्ट करने के लिए पर्याप्त है। किसी ने काम को तो छोड़ दिया किन्तु क्रोध की मात्रा उसमें बनी ही रही, इससे भी वह दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता। जिस प्रकार किसी के शरीर में अनेक रोग हों और वह उनसे दुखी हो तो केवल एक रोग के निवारण मात्र से उसकी दुःख निवृत्ति कभी नहीं हो सकती। कल्पना कीजिए किसी को दाढ़ का दर्द भी है और जिगर भी है किंतु रोगी यह सोच ले कि दाढ़ का इलाज करने से ही मुझे पूर्ण सुख मिल जावेगा यह असम्भव है, क्योंकि बड़ा हुआ जिगर ही उसके प्राण ले सकता है। इसलिये कहा।

इन्द्रियाणां हि सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।

तेनास्य क्षरतिप्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥

सारी इन्द्रियों के दोष निवारण के बाद यदि केवल एक इन्द्रिय का दोष भी शेष रह जाता है तो जैसे चमड़े की मशक में एक छोटा सा भी छेद हो जाने पर सारा पानी निकल जाता है, उस ही प्रकार

(६२)

एक ही इन्द्रिय दोष होने के कारण बुद्धि के खराब होने से मनुष्य नष्ट हो जाता है। इसलिए समस्त दोषों की निवृत्ति ही आवश्यक है, उससे ही मनुष्य का पूर्ण कल्याण संभव है।

दोषोत्पत्ति के स्रोत

जिन दोषों के कारण व्यक्ति, जाति, समाज, देश और राष्ट्र पतित अवस्था को पहुँच जाते हैं, जिनके कारण सारा संसार दुःखों में डूब जाता है, मय, चिन्ताएँ सबमें व्याप्त हो जाती हैं, आखिर उनके स्रोत कौन से हैं (१) 'पूर्व जन्म के कुसंस्कार,' जो बुराईयों को जीवन के साथ लाते हैं। (२) 'तामसी वृत्तियाँ' जो तमो गुणी खान पान से तथा तमो गुणी अध्ययन और श्रवणसे पैदा होती हैं तथा (३) 'असत्य का आश्रय' जो मनके दूषित होने से प्राप्त होता है।

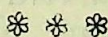
वास्तव में दोषों की उत्पत्ति की जिम्मेवारी हमारी, हमारे समाज की और हमारे शासकों की है। बहुत सी बुराईयाँ तो हमारे अविवेक पूर्ण कार्यों से हमारे अन्दर ही पैदा हो जाती हैं। बहुत से दोषों को हम समाज द्वारा अपना लेते हैं और बहुत सी बुराईयाँ शासन के दोषों के कारण हमारे अन्दर पैदा हो जाती हैं। प्रभु ने जब मनुष्य को बुद्धि दी है तो सबसे पहिला कर्तव्य मनुष्य का यह है कि वह हर बात को अपनी बुद्धि से विचारे और अच्छे तरीके से परखे। यदि अपने में इतनी बुद्धि नहीं है तो और बुद्धिमान् आदमियों से जाकर सलाह ले। जल्दबाजी से कोई काम न करे।

उचितभर्नाचतं वा कुर्वता कार्यमादौ

परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन

अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते

मनुष्य चूंकि कर्म करने में स्वतन्त्र है इस लिये भला बुरा वह कुछ भी कर सकता है, किन्तु कार्यारम्भ से पहिले उसको उस कार्य का परिणाम सोच लेना चाहिये। यदि जल्दबाजी में बिना विचारे वह कोई कार्य कर डालेगा तो उसका दुष्परिणाम निकलने पर उसको हृदय का जलाने वाला कष्ट, जैसा शस्त्र से छेदन करने के बाद होता है वैसा कष्ट होगा इस लिए विवेक पूर्वक प्रत्येक कार्य को करना पर मावश्यक है। विवेक पूर्वक किये गये कार्य ही दोष रहित होते हैं यही दोष दर्शन है।

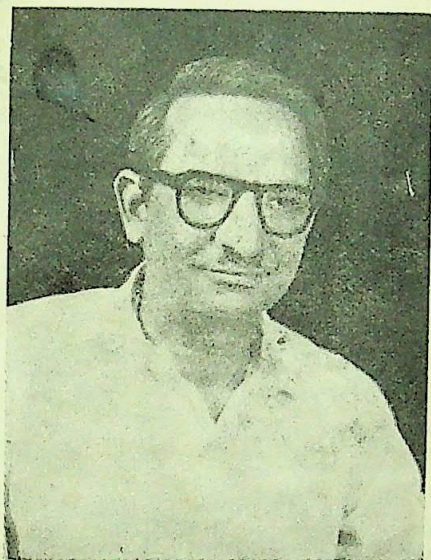


वाचरस्पष्टिपाठकों से निवेदन

यदि जनता ने इस पुस्तिका में प्रदर्शित विचारों को अपनाया और हमें सहयोग दिया तो हम इस ही प्रकार की आध्यात्मिक विषय की अन्य पुस्तिकाएं यथा समय पर प्रकाशित करते रहेंगे। जो व्यक्ति अपने जीवन में प्रसन्नता लाने के इच्छुक हों, और अपना जीवन पवित्र बनाना चाहें, उन्हें चाहिये कि वो अमोघ प्रकाशन द्वारा प्रकाशित होने वाली अन्य पुस्तकों के सम्बन्ध में लिख भेजे कि इतनी-इतनी प्रतियाँ प्रत्येक प्रकाशन की उन्हें भेजी जाती रहें। इस प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य जनता में उनके हित की बातों को लाना है, जिससे शारीरिक, मानसिक, तथा आत्मिक शान्ति बनी रहे। प्रकाशित होने वाली प्रत्येक पुस्तक का मूल्य साधारण ही होगा। जो नियमित रूप से पुस्तकों के स्थायी ग्राहक बनेंगे तथा पुस्तकों की सैंकड़ों प्रतियाँ एक साथ मँगावेंगे उन्हें १०% कमीशन दिया जायेगा तथा उन्हें १०) अग्रिम धन जमा कराना होगा जिससे वो जब चाहें वापस ले सकेंगे अथवा पुस्तकों के मूल्य में से कटवा सकेंगे, किन्तु फिर उनका नाम स्थायी ग्राहकों में से काट दिया जावेगा और वो फिर १०% कमीशन लेने के अधिकारी नहीं रहेंगे। हमारे अगले प्रकाशन "पुस्तकशतकम्" तथा "जीवन बोध" नाम के होंगे। ग्राहक नोट करते और जितनी संख्या में मँगाना चाहें हमें लिख भेजें। ये दोनों पुस्तकें भी इस पुस्तक के लेखक श्री पं० महेन्द्रदेव जी श्रीजी विद्याभूषण द्वारा लिखित ही होंगी। जो धर्मात्मा और पुण्यात्मा परीपकार की दृष्टि से दूसरों का हित सोचते हैं उनको चाहिये कि हमसे पुस्तक खरीद कर निर्धन अधिकारियों को मुफ्त बाँटें, जिससे उनके जीवन में सुधार हो। जीवन में लोगों के विचारों में पवित्रता पैदा करना सब से बड़ा पुण्यकार्य है। सुधरे हुए विचार वाला कोई दुष्कर्म नहीं कर सकता।

१३४९

—प्रकाशक



लेखक

GURUKUL KANGRI LIBRARY		
Signature		Date
Accession	<u>Ram</u>	<u>26-7-94</u>
Class no.		
Category		
Topic	<u>Pharma</u>	<u>7-11-03</u>
Index		
F.A.R.		
Any other		
Checked		

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12